Con. 4. VIII.2.40
250

अंक 8
संख्या 2

मंगलवार
17 मई
सन् 1949 ई.

भारतीय विधान-परिषद्

के

वाद-विवाद

की

सरकारी रिपोर्ट

(हिन्दी संस्करण)

विषय-सूची

पृष्ठ

राष्ट्रमंडल के निर्णय के अनुसमर्थन का प्रस्ताव–*(जारी)*..... 61–127

भारतीय विधान परिषद्

मंगलवार, 17 मई, 1949

भारतीय विधान परिषद की बैठक कांस्टीट्यूशन हाल, नई दिल्ली में प्रातः आठ बजे, अध्यक्ष महोदय, माननीय डा. राजेन्द्र प्रसाद की अध्यक्षता में समवेत हुई।

राष्ट्रमण्डल के निर्णय के अनुसमर्थन का प्रस्ताव—*जारी*

अध्यक्षः अब हम इस प्रस्ताव पर विचार-विमर्श आरम्भ करेंगे। सेठ गोविन्द दास।

***सेठ गोविन्द दास** (मध्यप्रान्त और बरार : जनरल): सभापति जी, मैं मूल प्रस्ताव का समर्थन और इस प्रस्ताव पर जो सुधार पेश हुए हैं उनका विरोध करने के लिये खड़ा हुआ हूं। सबसे पहले यह सवाल उठता है कि हमारे माननीय प्रधानमंत्री जी ने जो एग्रीमेंट किया है वह किसी प्रकार भी हमारी स्वतंत्रता को, हमारे प्रजातंत्र को, राजनीति और आर्थिक किसी भी दृष्टि से क्या किसी तरह की बाधा पहुंचाता है? मैं यह कहना चाहता हूं कि इस एग्रीमेंट के बाद भी हमारा देश पूरी तरह से स्वतंत्र रहेगा। जब हमारे प्रधानमंत्री जी का ग्रेट ब्रिटेन जाने का सवाल उठा था उस समय मैंने पार्लियामेंट में पूछा था कि क्या वहां पर कोई ऐसा फैसला भी हो सकता है जिससे हमारा देश, जो सौवरिन रिपब्लिक होने वाला है, उसमें किसी प्रकार की बाधा पहुंचे? इस सवाल का बड़े स्पष्ट रूप से हमारे प्रधानमंत्री जी ने उत्तर दिया था कि ऐसा कोई भी फैसला वे वहां पर करने वाले नहीं हैं।

कल जब श्री दामोदर स्वरूप जी सेठ बोल रहे थे, तब उन्होंने यह कहा था कि हमारे प्रधानमंत्री जी ने यथार्थ में जिस बात का उन्हें अधिकार न था वह कर दी। मुझे उनकी यह बात सुनकर बहुत आश्चर्य हुआ। दामोदर स्वरूप जी ने कहा कि इन 28 वर्षों तक हम जिस मुकम्मिल आजादी को हासिल करना चाहते थे वह इससे खत्म हो गई और उन्होंने यह भी कहा कि इस सम्बन्ध में विलायत जाने के पहले हमारे प्रधानमंत्री जी ने हम लोगों से कोई सलाह व मशविरा नहीं किया। मैं दामोदर स्वरूप जी से यह कहना चाहता हूं कि हमने 28 वर्ष तक जिस कांग्रेस के झंडे के नीचे अपनी आजादी की लड़ाई लड़ी, उस कांग्रेस के जयपुर अधिवेशन ने इस सम्बन्ध में अपना निर्णय कर दिया था और हमारे प्रधानमंत्री जी ने उसी निर्णय को कार्य रूप में परिणत किया है।

---

*इस चिह्न का अर्थ है कि यह अंग्रेजी वक्तृता का हिन्दी रूपान्तर है।

[सेठ गोविन्द दास]

बात यह है कि इस वक्त दुनिया बहुत छोटी हो गई है। संसार के देश एक दूसरे के बहुत समीप आ गये हैं। आवागमन के इस प्रकार के साधन हमें प्राप्त हैं जिनसे हम एक जगह से दूसरी जगह, जहां पहले हफ्तों में पहुंचते थे अब घण्टों में पहुंचते हैं। ऐसी परिस्थिति में क्या हम अकेले रह सकते हैं और यदि हम अकेले नहीं रह सकते तब हमें क्या करना चाहिये? फिर हम जब चाहे तब इस समझौते को तोड़ सकते हैं।

कल दामोदर स्वरूप जी ने यह कहा कि एक न एक गुट में शामिल होने का यह अर्थ होता है कि अच्छे या बुरे किसी अवसर पर हमको उस गुट में ही रहना पड़ेगा। मैं कहना चाहता हूं कि इस एग्रीमेंट में अगर कोई विशेषता है तो वह यह है कि कामनवेल्थ में रहने पर भी कामनवेल्थ की हर बात में शामिल होने के लिये हम बाध्य नहीं। फिर यह सवाल उठता है कि यदि हमको किसी के साथ रहना ही है तो हम किस के साथ रहें। ग्रेट ब्रिटेन से हमारा बहुत पुराना सम्बन्ध है। जब तक हमें स्वतंत्रता नहीं मिली थी तब तक हमारा उसके साथ दूसरे प्रकार का सम्बन्ध था मगर हमको स्वतंत्रता मिल जाने के बाद वह दूसरे प्रकार का हो गया। जब तक हम स्वतंत्र नहीं हुए थे, उस स्वतंत्रता को हासिल करने के लिये हमारे और ग्रेट ब्रिटेन के बीच एक तरह की कशमकश चल रही थी और उस कशमकश में कटुता भी थी जिसे मैं स्वीकार करता हूं। महात्मा गांधी जी का जो दर्शन (फिलासफी) था और अभी जो दुनिया के सामने मौजूद है उसके अनुसार शत्रुता हमारी किसी के साथ नहीं हो सकती। फिर भी उस कशमकश के कारण कुछ कटुता अवश्य थी। बाद में परिस्थितियां बदल गईं, हम स्वतंत्र हो गये और हमको स्वतंत्रता प्राप्त हुई। महात्मा गांधी के प्रताप के कारण, बिना किसी रक्तपात के अब ग्रेट ब्रिटेन और हमारे बीच किसी तरह की कशमकश और किसी तरह की कुटता नहीं है। वह कटुता अब मैत्री में परिणत हो गई। यदि हम सारी बातों को पुरानी नजर से देखें तो हमारे सामने कठिनाइयां उपस्थित होती हैं। कल श्री कामत ने यहां पर गीता का एक श्लोक कहा था। मैं इस विधान परिषद् के सदस्यों को गीता के ही एक दूसरे श्लोक का स्मरण दिलाता हूं। यदि हम पुराने क्षोभ के कारण पुरानी नजर से सब चीजों को देखें तो हमारे सामने भगवान श्री कृष्ण का वह श्लोक आता है जिसमें उन्होंने कहा है:

क्रोधाद भवति संमोहः संमोहात् स्मृतिविभ्रमः।
स्मृतिभ्रंशात् बुद्धिनाशो बुद्धिनाशात् प्रणश्यति।।

इसलिये इन बातों में हमें क्रोध और क्षोभ को पास नहीं आने देना चाहिये और हमको जो इस समय की परिस्थिति है उसकी तरफ ध्यान देकर निर्णय करना चाहिये।

मैं माननीय प्रधानमंत्री जी को इस बात पर हार्दिक बधाई देता हूं कि उन्होंने इस समय की वास्तविक परिस्थिति को देखा। वे हमारे वही नेता हैं जिनकी अध्यक्षता में हमने पहले पहल लाहौर में मुकम्मिल आजादी का प्रस्ताव पास किया था। इन परिस्थितियों में जो सबसे अच्छा देश के लिये था वह उन्होंने किया है।

मैं मानता हूं कि जिस कामनवेल्थ में हम शामिल हुए हैं, वह कामनवेल्थ अभी सच्चा कामनवेल्थ नहीं है। मैं जानता हूं कि अफ्रीका में हमारे निवासियों की जो स्थिति है, वह हमारे लिये तो दु:ख की बात है ही पर अफ्रीका निवासियों के लिये वह लज्जा की बात होनी चाहिये। मैं यह भी मानता हूं कि आस्ट्रेलिया की जो व्हाइट पालिसी, जो श्वेतांगी नीति है, वह भी कामनवेल्थ के लिये शोभास्पद नहीं। परन्तु सवाल यह है कि यदि हम उसमें न शामिल होते, तो क्या हम इस परिस्थिति को बदल सकते थे? दक्षिण अफ्रीका के सम्बन्ध में अभी यू.एन.ओ. में जो कुछ हुआ है, उसे आप जानते हैं। कामनवेल्थ में शामिल होने से इन सवालों का यथार्थ में कोई सम्बन्ध नहीं है। इन सवालों को हमें दूसरे ढंग से हल करना पड़ेगा। क्षोभ और क्रोध में आकर हम कुछ न करें।

कुछ लोगों का यह भी विचार है कि हर एग्रीमेंट का एक नतीजा यह भी निकल सकता है कि आगे जब लड़ाई हो, उसमें हमें जो ग्रेट ब्रिटेन का गुट है, उसमें शामिल होना पड़े। परन्तु इस मामले को भी हमारे प्रधानमंत्री जी ने कई बार स्पष्ट किया है कि कामनवेल्थ में शामिल होने का अर्थ यह कदापि नहीं हो सकता कि जो लड़ाई होगी उसमें हमें शामिल होना पड़ेगा।

मैं तो यह आशा करता हूं कि आगे चलकर हम अपनी फिलासफी, अपने दर्शन, जो जनशक्ति हमारे देश में है उस जनशक्ति, जो नैसर्गिक साधन हमारे देश को प्राप्त हैं, उन नैसर्गिक साधनों के कारण ऐसी परिस्थिति ला सकते हैं, सब पर प्रभाव डालकर ऐसी हालत उत्पन्न कर सकते हैं, जिससे हम यथार्थ में कामनवेल्थ के देशों का नेतृत्व कर सकें। संसार में संसार के फेडरेशन की कल्पना की जा रही है। वह कल्पना बड़ी सुखद कल्पना है। वह कल्पना कार्यरूप में परिणत होगी, यह भी नहीं कहा जा सकता। परन्तु यदि वह कल्पना अस्तित्व में आ सके तो हमारी जो स्थिति है, उसको देखते हुए यह भी हो सकता है कि संसार के एक फेडरेशन स्थापित करने में भी हम सफल हो सकें।

अन्त में मैं प्रधानमंत्री जी को फिर से बधाई देना चाहता हूं और मैं इस आशा से अपने वक्तव्य को पूर्ण करना चाहता हूं कि भगवान करे संसार की स्थायी शांति, संसार की स्वतंत्रता और हर क्षेत्र में संसार के उत्कर्ष के लिये हमारा जो एग्रीमेंट हुआ है वह केवल हमारे लिये ही नहीं परन्तु सारे संसार के लिये लाभप्रद हो।

पं. ठाकुरदास भार्गव (पूर्वी पंजाब : जनरल): जनाब प्रेसीडेंट साहब, मैं इस रेजोलेशन की बड़ी जोर से ताईद करता हूं। मैं इस मौके पर बिना किसी हेजीटेशन के अपने प्राइम मिनिस्टर साहब को मुबारिकबाद पेश करता हूं, जिनकी कि यह महज पर्सनल ट्रायम्फ नहीं है, जैसा कि सरदार साहब ने फरमाया बल्कि हमारी शान के मुताबिक, देश की उस साफ पोलिसी की ट्रायम्फ भी है। हमारे प्राइम मिनिस्टर साहब ने हमको कई मौकों पर बतलाया है कि देश की इंटरनल पालिसी की हाई-लाइट्स क्या हैं। इसके अन्दर सबसे अव्वल चीज जो फण्डामेंटल और सेंट्रल चीज है, वह यह है कि हिन्दुस्तान एक सौवरिन इंडिपेंडेंट रिपब्लिक है। जो साहब पंडित जी की पुरानी तकरीरों का हवाला देकर दूसरा नतीजा निकालते हैं उनसे मैं कहता हूं कि वह साहब जिन्होंने रावी पर आजादी का सबक सारे देश को दिया, जिन्होंने उस जमाने में जबकि डोमिनियन स्टेटस को इंडिपेंडेंटस का सबस्टैन्स कहते थे, जबकि बहुत से लोग आजादी और डोमिनियल स्टेटस में कोई तमीज नहीं करते थे, उस वक्त उन्होंने हमारे सामने एक ऐसा मेयार रखा जो कि अव्वल दरजे के किसी मुल्क के वास्ते बायसे फख्र हो सकता था। जिन साहब ने दूसरे मौके पर हमारे सामने वह औबजेक्टिव रिजोलेशन रखा जो दरअसल कान्स्टीट्यूशन की वह जान है, अगर आज वही हमारे सामने यह एक रेजोलेशन रखते हैं, जो दुनिया के अन्दर हमें एक स्टेटस देता है, तो इसमें क्या ताज्जुब की बात है। जो लोग बराबर उनकी स्पीचेज की कद्र करते हैं, जिस दिल और दिमाग ने उन रेजोलेशनों को बनाया वही दिल और दिमाग आज देश की सेवा के वास्ते, देश का सिर ऊंचा करने के वास्ते हमारी एक दूसरे रेजोलेशन की तरफ तवज्जो दिला रहे हैं तो हमें क्यों ताम्मुल है? मुझे तो इनका स्वागत करने और ताईद करने में ऐन खुशी होती है क्योंकि यह हमारे ख्याल के मुताबिक है, उन पुराने कनक्लूजन्स के मुताबिक है जो हमारे सामने रहते आए हैं।

इसके अलावा दूसरी चीज जो इस देश को फारेन पालिसी की हाई-लाइट्स है, वह यह है कि दूसरे ऐसे मुल्कों की, जो हमारे मुकाबले में सप्रेस्ड हैं, हम उनकी इमदाद करें।

तीसरी चीज जो बेसिक उसूल हमने अपने सामने रखे हैं कि हम दुनिया के अन्दर किसी पोलिटिकल ब्लाक का गलत तौर पर साथ न दें और हम किसी के साथ मिलकर किसी के हकूक पर डाका न मारें। इन चारों उसूलों के खिलाफ हम न जायें। इन चारों उसूलों के साथ यह एग्रीमेंट जिसका कि रेटीफिकेशन हमारे सामने मांगा जाता है, यह उन चारों उसूलों के साथ मेल खाता है, इन चारों उसूलों को आगे बढ़ाता है। मुझे कोई शक नहीं है कि यह बिल्कुल ठीक रजोलेशन है, एक ऐसा रेजोलेशन है जो हमारे दिलों का रिफ्लेक्शन है। मैं इस कनैक्शन में जनाब की तवज्जह थोड़ी सी पुरानी हिस्टरी की तरफ दिलाना चाहता हूं। सवाल उठा है यहां पर कि हमको क्या फायदा होगा और

इसको रेटीफाई करने से क्या नुकसान होगा, हम एक तराजू में तोलना चाहते हैं उन फवायद को और इन नुक्सानात को जो इस एग्रीमेंट से हमको होंगे। मुझे यह क्राईटीरियन भी मंजूर है। मैं अर्ज करना चाहता हूं कि हमारे ख्याल के मुताबिक दुनिया के अन्दर जैसे जुगराफिया का इफेक्ट होता है, उसी तरह से हिस्टरी का भी असर एक ऐसी बड़ी भारी चीज है, जिसमें से हम नहीं निकल सकते। कई सौ बरस से हमने जानबूझकर नहीं बल्कि हिस्टरी के कम्पलशन से हमारे मुल्क पर ग्रेट ब्रिटेन की हकूमत रही है। आज में पूछना चाहता हूं कि कोई हमारी असेम्बली को देखे, चाहे हमारी सारी स्टेट को देखे, कानून को देखे, आर्मी को देखे, हमारी नेवी को देखे, हमारी इंडस्ट्रीज को देखे, हमारे रहन-सहन को देखे, हमारे आउटलुक को देखे, कल्चर को देखे, हमारी सारी जिन्दगी को देखे, तो मुझे कोई शक नहीं है कि हर एक आदमी को यह मानना पड़ेगा कि कई सौ बरस के तालमेल से हम लोगों ने जो अपना ढंग निकाला है, हमने जो अपनी तरक्की का रास्ता निकाला है, हम लोगों ने जिस रास्ते पर चलना शुरू किया है, वह एक खास तरह का बन गया है, वह उसके मुताबिक है जो कामनवेल्थ के बड़े-बड़े मुल्क जिसके मुताबिक चलते हैं, उसके मुताबिक है। आज हम गो रिपब्लिक में रहना चाहते हैं तो भी ग्रेट ब्रिटेन और दूसरे मुल्कों के साथ डिमोक्रेसी के मुताबिक चलते हैं। अगर हम आज किसी चीज के पीछे चलते हैं तो वह इंग्लैंड की मदर आफ पार्लियामेंट के पीछे चलते हैं। हमारा यह सारा कान्स्टीट्यूशन जो कि हम यहां बना रहे हैं, इसकी दरअसल बिना गवर्नमेंट आफ इंडिया एक्ट है जो कि सन् 1935 में बना था। मैं यह नहीं कहता कि हम एक बहुत पुरानी सिविलाइजेशन के मालिक होते हुए और एक इंडिपेण्डेण्ट नेशनेलटी होते हुए किसी की नकल करना चाहते हैं। हम हरगिज नकल नहीं करना चाहते, पर साथ ही हम यह नहीं भूल सकते कि बहुत वर्षों से हमारा ऐसा ताल्लुक हो गया है जिसको हम यकायक स्नेप नहीं कर सकते। अगर आज हमको एक हवाई जहाज के पुर्जे की जरूरत होती है तो उसके लिए हमको विलायत जाना पड़ता है। अगर आज हम दिल्ली जहाज में कोई मशीन लेते हैं तो उसके पुर्जों के लिए हमको विलायत जाना पड़ता है। जितनी भी हमारी मशीनरी है उसके वास्ते हम आज इंगलैंड पर डिपैण्डेंट हैं। तो आज हम इस चीज को क्यों भूल जाते हैं कि जिन मुल्कों के साथ हमारा बहुत अर्से से ताल्लुक रहा है उनके साथ हमको और कुछ अर्से तक जरूरी तौर पर रहना है। मैं यह मानता हूं कि हमने अंग्रेजों के क्राउन की हुकूमत से अपना ताल्लुक कता कर लिया और ठीक तौर पर कता कर लिया। लेकिन क्या यह अक्लमन्दी की बात नहीं है कि हम अपने फायदे के लिये उस मुल्क से कुछ और अर्से तक ताल्लुकात कायम रखें। जिस तरह कि सन् 1947 में हमारी असेम्बली ने पास किया था कि हमारे गवर्नर जनरल लार्ड माउंट बेटन रहेंगे और हमारे कमाण्डर इन चीफ आकिनलेक रहेंगे और जब तक हमको उनकी जरूरत थी वह रहे और फायदेमन्द साबित हुए। आज हम अपनी आर्डिनेन्स फैक्टरीज को देखें और उन फैक्टरीज को देखे जहां आर्म्स

[पं. ठाकुरदास भार्गव]

और एम्युनीशन बनता है और देखें कि उनको कौन गाइड करता है। वह अंग्रेज अफसर हैं। इससे आज कौन इन्कार कर सकता है कि हम इस काबिल नहीं हैं कि हम दुनिया में यह कह सकें कि हमने इन दो वर्षों में इतनी तरक्की कर ली है जितनी कि दूसरे मुल्कों ने सदियों में की है। यह मैं मानता हूं कि नेहरू जी और सरदार पटेल की हुकूमत में इन दो सालों में हम बहुत ऊंचे हो गये हैं और दुनिया के मुल्कों के साथ बराबरी का दरजा हासिल करेंगे जो कि हमारा डयू है, लेकिन यह काम आहिस्ता-आहिस्ता होगा, हम अक्लमन्दी को अपने हाथ से न जानें दें। हम वह तरीके इस्तेमाल करें कि हम दुनिया के दूसरे मुल्कों से बिल्कुल आजाद हो जायें। लेकिन जब तक ऐसा नहीं होता, तब तक क्या यह अक्लमन्दी होगी कि हम सारे उन अंग्रेज अफसरों को निकाल दें जो कि आज हमारी फैक्टरियों को चला रहे हैं। यह हमारे इंटररेस्ट में है कि हम कामनवेल्थ के साथ रहें जब तक कि यह हमारे लिये मुफीद है। हमेशा एसोसियेशन से नुकसान ही नहीं होता। बतलाया गया है कि इससे अंग्रेज खुश हैं और अमरीकन्स खुश हैं कि हिन्दुस्तान कामनवेल्थ में शामिल हो गया। मैं भी इससे बहुत ज्यादा खुश हूं, क्योंकि हमेशा जो एसोसियेशन बनते हैं वह म्यूच्युएल फायदे के लिये ही बनते हैं। कहा गया है कि अच्छा होता अगर इसके अन्दर इंग्लिस्तान के बादशाह को सिम्बोलिक हैड न माना गया होता, अच्छा होता अगर साउथ अफ्रीका की गुत्थी भी सुलझ गई होती और अच्छा होता अगर इस एग्रीमेंट के जरिये आस्ट्रेलिया की व्हाइट पालिसी हटा दी गई होती। मैं बहुत अदब से अर्ज करना चाहता हूं कि इस एग्रीमेंट में यह चीजें नहीं आ सकती थीं। अगर वहां पंडित नेहरू यह सवाल पेश करते तो दूसरे मुल्क कह सकते थे कि हम आपसे क्या बात करें क्योंकि आज तक हिन्दुस्तान में कितने ही अछूत ऐसे हैं जिनको कि जमीन खरीदने का हक हासिल नहीं है और जब तक आपके घर में यह हालत है तब तक हम आपसे बात नहीं कर सकते। मैं आपसे पूछना चाहता हूं कि जिन खराब बातों को हम दूसरे मुल्कों से दूर करवाना चाहते हैं, क्या उनको हमने हिन्दुस्तान में खत्म कर दिया है? मैं कहता हूं कि नहीं किया है। कई साहबान ने यही बातें, बतौर अमेण्डमेंट, इसके अन्दर दाखिल करने की कोशिश की है। मैं कहता हूं कि वह बिल्कुल इररेलेवेण्ट है और हम उनके मुताल्लिक कोई रिजोलेशन पास नहीं कर सकते।

कहा गया है कि चूंकि हम आज एक ऐसे एसोसियेशन में शामिल हो रहे हैं जो कि एंग्लो-अमरीकन ब्लाक से ताल्लुक रखता है इस वजह से हम एंग्लो-अमरीकन ब्लाक में हो जायेंगे और रशिया हमसे नाराज हो जायेगा। यह भी कहा गया है कि अगर रशिया चाहे तो चन्द घण्टों में हिन्दुस्तान आ सकता है। मैं आपसे अदब के साथ अर्ज करूंगा कि यह बात बिल्कुल गलत है। आप मुझे मुआफ करेंगे अगर मैं एक जरा स्लेंग की मिसाल पेश करूं। कहते हैं कि लो जी फलां की मां ने खसम किया, बहुत बुरा किया,

लेकिन अगर खसम करके छोड़ दिया तो और भी बहुत बुरा किया। आज हम अर्से से इस एसोसियेशन में चले आ रहे हैं। हो सकता था कि दूसरे मुल्क आज हमारी रिपब्लिक डिक्लेअर होते ही हमको उस एसोसियेशन से खारिज कर देते और कह देते कि आप अपना रास्ता देखिये क्योंकि आपका एसोसियेशन किंग के साथ नहीं है। हमारे पंडित नेहरू वहां इसलिये तशरीफ नहीं ले गये थे कि वहां जाकर उन मूल्कों से दरख्वास्त करें कि आप हमको किसी तरह इस एसोसियेशन में रख लीजिये। बल्कि वह इस वास्ते गये थे क्योंकि वह नेशन्स अपना पुराना ताल्लुक कायम रखना चाहती हैं चाहे हम किंग का एलीजेंस न मानें। आज हर एक हिन्दुस्तानी अपना सर ऊंचा कर सकता है कि वह किसी हुकूमत के मातहत नहीं है सिवा इण्डिपेण्डेण्ट सावरिन इण्डियन रिपब्लिक के। यह सबसे बड़ी बात है। अगर वह लोग कहते कि हम आपको किसी और शर्त पर शामिल कर सकते हैं, इस शर्त पर नहीं, तब तो एक सवाल उठ सकता था। आज तक हम इस कामनवेल्थ की जम्हूरियत से इसी वजह से खार खाते थे कि इसमें हमको बराबरी का हक नहीं था, लेकिन मैं पूछता हूं कि आज जबकि उसका हर एक मेम्बर बराबर का पार्टनर है तो उसमें शामिल होने में हमको क्यों ताम्मुल होना चाहिये। अगर आज हिन्दुस्तान की जरूरत दूसरे मुल्कों को है तो हिन्दुस्तान को भी दूसरे मुल्कों की जरूरत है। मैं इस बात को एक मिनट के लिये भी मानने को तैयार नहीं हूं कि इस एग्रीमेंट को रेटीफाई करने में हमारी एसेम्बली को कोई ताम्मुल हो सकता है। यह तो हमारी जीत रही कि हम बादशाह के मातहत नहीं हैं और दूसरे मुल्क जो कि बादशाह के मातहत हैं वह हमारे साथ इस एसोसियेशन में मिलने को तैयार हैं। आप किसी नुक्ते ख्याल से देखें, इसमें कोई शक नहीं है कि इसमें हमारा फायदा है कि हम इसको रेटीफाई करें।

इसके अलावा हमको और बातों का भी ख्याल रखना है। अगर आज यह कन्टीन्यूइटी टूट जाती है तो सारे ब्रिटिश पजेशन्स में हिन्दुस्तानियों की पोलिटिकल और इकानोमिक हालत पर बहुत बुरा असर पड़ेगा।

आपको बखूबी मालूम है कि यूनाइटेड नेशन्स के अन्दर एक छोटी सी काउंसिल है जिसका मंशा यह है कि जिन कौमों का स्टैण्डर्ड आफ लिविंग नीचा है उसको उठाने की कोशिश की जाये। पिछली दफा जब पार्लियामेंटरी कान्फ्रेंस की बैठक हुई और उसमें 34 मुल्कों के आदमी शरीक हुए थे तो वहां भी इससे इन्कार नहीं किया गया था कि कामनवेल्थ का नाम ब्रिटिश कामनवेल्थ न रखा जाये बल्कि नाम तब्दील कर दिया गया था। उस वक्त मैंने इकानोमिक कन्डीन्शस के बारे में जिक्र करते हुए कान्फ्रेंस में कहा था कि हमारे साथ इंग्लैंड ने इन्साफ नहीं किया, हमारे पास पांच हजार का कोस्ट लाईन है पर हमारे पास इंग्लैंड ने कोई जहाज नहीं छोड़ा, हमारी 40 हजार मील की रेलवे ट्रेक है, पर हमारे पास कोई लोकोमोटिव बनाने का कारखाना नहीं है और इस गरीब मुल्क

[पं. ठाकुरदास भार्गव]

से 1700 मिलियन स्टर्लिंग कर्जा जबरदस्ती के लिये है। मैं अर्ज करूंगा कि कामनवेल्थ को भी इस तरह की एक काउंसिल कामनवेल्थ के अन्दर भी बनानी चाहिये ताकि वह जिन मेम्बरो का स्टैण्डर्ड नीचा है उसको बढ़ाने में मदद करे। मैं पूछता हूं कि आज हिन्दुस्तान की जरूरत में कौन सा मुल्क हाथ बटा सकता है। क्या रूस हमारी मदद कर सकता है या अमरीका हमारी मदद कर सकता है? मैं समझता हूं कि इंग्लैंड का और कामनवेल्थ के दूसरे मुल्कों का फर्ज है कि वह इन्साफ करें और हिन्दुस्तान की तरक्की करने में हाथ बटायें। मगर उनको हमसे फायदा होता है तो हमको भी उनसे फायदा हो। ट्रेड इंटर नेशनल चार्टर में भी इस कामनवेल्थ को रिकग्नाइज किया गया है और उसमें कामनवेल्थ की यह पोजीशन है कि जो प्रिविलेजेज और मुल्क उसको दें वह प्रिविलेजेज वह भी और मुल्कों को दे। इस वास्ते यह कहना कि रशिया नाराज हो जायेगा यह बिल्कुल गलत हैं। रशिया के नाराज होने का कोई सवाल ही पैदा नहीं होता और अगर जिन मुल्कों के साथ हमारा अब तक ताल्लुक रहा है अगर उसको हम एकदम छोड़ दें तो ऐसा करने का हमको क्या मौका है। हिन्दुस्तान की यह पुरानी प्रथा रही है कि जिस मुल्क के साथ ताल्लुक रखा उसके साथ दोस्ती का हक पूरा किया और अपनी दोस्ती को कायम रखा। हमको अपने दोस्तों को कोई ऐसा मौका नहीं देना चाहिये कि जिससे कोई नाराजगी का सवाल पैदा हो, उनका पुराना साथ छोड़ने से।

इसमें शक नहीं कि न तो इस आरगेनाइजेशन का कोई सेक्रेटरी है और न इस आरगेनाइजेशन का कोई प्रेसीडेंट है। ब्रिटिश किंग की बाबत कहा जाता है कि वह इसका हैड है, यह मेरी समझ में नहीं आया कि यह क्या चीज है। इसकी मीटिंग में ब्रिटिश किंग प्रिसाइड नहीं करेगा, वह इसका प्रेसीडेंट कभी नहीं होगा और न कभी कोई कास्टिंग वोट देगा। न वीटो का सवाल पैदा होता है। तो उसको कभी ऐसे अख्तियार इस्तेमाल करने का मौका नहीं मिलने को है। कहा तो गया है कि किंग का कोई फंक्शन नहीं है। यह एग्रीमेंट एक ट्रीटी से भी कम वकअत रखता है, आप जब चाहें इसको स्क्रैप कर सकते हैं। इस तरह इस ज्वाइंट फैमिली में आप सब इंडिपेण्डेण्ट होंगे। यह एक तरह से पार्टनरशिप नहीं बल्कि एक एसोसियेशन है जिसके हम एक मेम्बर हैं और उस हैसियत से हमारा सिर और भी ऊंचा है। हमको आज जो काम करना है वह हम बेहतर तरीके से कर सकते हैं, बैहैसियत एक मेम्बर इस एसोसियेशन के होने के। इन अल्फाज के साथ मैं इस रिजोल्यूशन की जोर से ताईद करता हूं।

***मि. तजम्मुल हुसैन** (बिहार : मुस्लिम): अध्यक्ष महोदय, हाल में पंडित जवाहरलाल नेहरू इंग्लैंड गये थे और उन्होंने छः अन्य स्वतंत्र देशों से एक समझौता किया था। हमारे

सामने अब यह प्रश्न है कि हमें उस समझौते का अनुसमर्थन करना चाहिये अथवा नहीं करना चाहिये। इस अवसर पर मैं उस समझौते के गुण-दोषों का विवेचन करने नहीं जा रहा हूं। यह समझौता चाहे अच्छा हो या बुरा या उदासीन इसका मैं जो कुछ कहने जा रहा हूं उससे कोई सम्बन्ध नहीं है। श्रीमान्, मेरा यह कहना है और मुझे इस सम्बन्ध में कुछ भी सन्देह नहीं है, कि सभा इससे सहमत होगी कि हमारे पास इस समझौते का अनुसमर्थन करने के अलावा कोई चारा नहीं है। इसका कारण यह है कि पंडित नेहरू ने यह समझौता पंडित नेहरू की हैसियत से नहीं किया। उन्होंने यह समझौता वैदेशिक मंत्री की हैसियत से, हमारे प्रधानमंत्री तथा नेता की हैसियत से और भारत के सर्वप्रधान प्रतिनिधि तथा वक्ता की हैसियत से, भारत के लोगों की ओर से किया। इसलिये अब हम उनके प्रति विश्वासघात नहीं कर सकते। मैं यह कह चुका हूं कि यह एक संधि है और...

***एक माननीय सदस्यः** यदि वह खराब हो तब भी?

***मि. तजम्मुल हुसैनः** वे हमारे प्रतिनिधि हैं और इसी हैसियत से वे वहां गये और यह जानते हुये कि वे वहां जा रहे हैं हमने उनसे कभी यह नहीं कहा कि आप न जाइये। क्या आपने उनसे कहा कि आप जो कुछ करने जा रहे हैं उसके सम्बन्ध में सभा से परामर्श लें? ऐसा कभी नहीं होता है। क्या कैनाडा के प्रधानमंत्री ने अपने लोगों से कुछ पूछा? परन्तु हमसे कहा गया है, हमने अपने नेताओं के वक्तव्यों को सुना है और हम यह जानते भी हैं, कि यहां के लोगों से परामर्श लिया गया था और हमारे उपप्रधानमंत्री ने हमसे कहा है कि जो कुछ किया गया है उससे वे पूर्णतया सहमत हैं। क्या कोई भी ऐसा समझदार आदमी है जो इससे सहमत नहीं है? जब हमारा प्रतिनिधि यहां से जाता है और कोई समझौता करता है तो फिर हमें इसकी चिन्ता न होनी चाहिये कि वह समझौता क्या है? हमें उसका अनुसरण करना चाहिये और उसका अनुसमर्थन करना चाहिये। श्रीमान्, मेरा तो अपना यह विचार है।

अब हमें यह देखना है कि वह समझौता है क्या? भारत एक स्वतंत्र देश है। अब वह पूर्णतया स्वतंत्र है। वह किसी देश के अधीन नहीं है और उसी प्रकार स्वाधीन है जैसे अमेरिका और ब्रिटेन और संसार के अन्य देश। उसे सर्व सत्तात्मक शक्तियां प्राप्त हैं। वह कोई भी काम कर सकता है और किसी भी काम का निराकरण कर सकता है। वह किसी भी देश से युद्ध छेड़ सकता है और किसी भी देश से शान्ति सन्धि कर सकता है। कोई भी देश हमारे आंतरिक तथा वैदेशिक मामलों में हस्तक्षेप नहीं कर सकता। इस समय हम एक ऐसे संघ के सदस्य हैं जो साधारणतया राष्ट्रमण्डल के नाम से विख्यात है। हमारे सम्मुख इस समय यह प्रश्न है कि हमें राष्ट्रमण्डल का सदस्य बने रहना चाहिये

[मि. तजम्मुल हुसैन]

अथवा नहीं। श्रीमान्, मेरा यह कहना है कि इससे हमारा हितसाधन ही होगा और हमें उसका सदस्य बने रहना चाहिये। जहां तक मैं समझ पाया हूं आपत्तिजनक बात केवल यही है कि इस समय सम्राट हमारा प्रमुख है। किन्तु हमारे प्रधानमंत्री ने इस दोष का बड़ी योग्यता से निराकरण कर दिया है। अब इंग्लैंड का सम्राट भारत का सम्राट नहीं रह गया है। अब सम्राट राष्ट्रमण्डल का प्रमुख एक प्रतीक के रूप में रहेगा। समझौते अथवा संधि के अनुसार भारत सम्राट के प्रति वफादार न रहेगा। यदि हमारे राष्ट्रपति इंग्लैंड, अमेरिका, रूस अथवा संसार के किसी देश को जायेंगे तो वे हमारे देश के प्रमुख समझे जायेंगे। यदि इंग्लैंड के सम्राट अथवा अमेरिका के प्रधान यहां आयेंगे तो वे एक स्वतंत्र राज्य के प्रमुख के अतिरिक्त और कुछ न समझे जायेंगे। इंग्लैंड का सम्राट कहीं भी भारत का सम्राट न समझा जायेगा। अपने राज्य के प्रमुख के रूप में हम उनका उसी प्रकार आदर करेंगे जैसे वे हमारे राष्ट्रपति अथवा किसी स्वतंत्र राज्य के प्रमुख का आदर करेंगे।

आखिर राष्ट्रमण्डल है क्या? जैसा कि मैं कह चुका हूं, वह सात विभिन्न स्वतंत्र देशों के प्रधानमंत्रियों का सम्मेलन मात्र है और उसका प्रत्येक सदस्य जब कभी वह चाहे उसे छोड़ सकता है। मैं एक उदाहरण देता हूं। यदि इंग्लैंड रूस के विरुद्ध युद्ध घोषित कर दे तो भारत क्या करेगा? भारत तीन बातों में कोई बात कर सकता है। वह रूस के विरुद्ध इंग्लैंड का साथ दे सकता है। परन्तु मेरा यह विश्वास है कि भारत यह कभी नहीं करेगा और न पंडित नेहरू ही ऐसा करेंगे। दूसरी बात यह है कि भारत तटस्थ रह सकता है। यही होगा। तीसरी बात यह है कि वह इंग्लैंड के विरुद्ध रूस का साथ दे सकता है। यदि यह हुआ तो राष्ट्रमण्डल उसी प्रकार छिन्न-भिन्न हो जायेगा जैसे कि राष्ट्र संघ हुआ था। वह स्वत: समाप्त हो जायेगा। इसलिये मेरा यह कहना है कि राष्ट्रमण्डल के सदस्य रहने पर भी हम पूर्णतया स्वतंत्र रहेंगे। मेरी तो अपनी यह धारणा है और यह प्रबल धारणा है कि यदि भारत राष्ट्रमण्डल में बराबर रहा, जैसा कि उसने निश्चय किया है, तो संसार में युद्ध नहीं होगा। युद्ध की सम्भावना टल जायेगी और इस प्रकार भारत संसार में शान्ति स्थापित करने में बहुत योग दे सकेगा। मेरा यह नम्र निवेदन है कि राष्ट्रमण्डल में रहने के लिये हमारे लिये यही कारण पर्याप्त है।

***अध्यक्ष:** पंडित बालकृष्ण शर्मा। परन्तु इसके पूर्व कि वे आरम्भ करें मैं एक बात कहना चाहता हूं। कई सदस्यों ने बोलने की इच्छा प्रकट की है। मुझे कई पर्चियां मिली हैं और आज भी मिल रही हैं। कल एक सदस्य महोदय ने यह आपत्ति की थी कि पर्चियों के आधार पर सदस्यों से बोलने के लिये न कह के अपनी जगहों पर उठने पर ही उनसे बोलने के लिये कहा जाये। मैं यही करना चाहता हूं। इसलिये मुझे आशा है

कि जो सदस्य पर्चियां भेज चुके हैं वे भी यदि बोलना चाहें तो अपनी जगहों में खड़े होंगे।

***पं. बालकृष्ण शर्मा** (संयुक्तप्रान्त : जनरल): श्रीमान्, भारत के प्रधानमंत्री के प्रस्ताव के विरुद्ध इस सभा में जो भाषण दिये गये हैं उन्हें मैंने ध्यानपूर्वक सुना है और राष्ट्रमंडल के प्रधानमंत्रियों के सम्मेलन की घोषणा के सम्बन्ध में समाचार पत्रों में तथाकथित 'वामपक्षियों' की आलोचनायें भी देखी हैं। इन सभी आपत्तियों को पढ़ने पर मैं इस निर्णय पर पहुंचा हूं कि ये मोटी तौर पर छः श्रेणियों में विभाजित की जा सकती हैं।

एक इस प्रकार की आपत्ति की गई है कि राष्ट्रमण्डल के प्रधानमंत्रियों की घोषणा, जिसे भारत ने स्वीकार किया है हमारी परम्परा के विरुद्ध है और यह सिद्ध करने के लिये कि हमारी परम्परा ब्रिटिश-विरोधी रही है, माननीय प्रधानमंत्री के भाषणों से तथा अखिल भारतीय कांग्रेस समिति के प्रस्तावों से बहुत से उद्धरण दिये गये हैं। पहली आपत्ति यह की गई है।

दूसरी आपत्ति यह की गई है कि इस प्रकार का कदम उठाकर हम ब्रिटिश साम्राज्यवाद से एक अपवित्र गठबन्धन कर रहे हैं।

तीसरी आपत्ति संक्षेप में इस प्रकार है कि इस प्रकार के कार्य से हम अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में निश्चित रूप से एंग्लो-अमेरिकन गुट में सम्मिलित हो जायेंगे और सर्वसत्ताधारी स्वतंत्र गणराज्य के नागरिक होने के नाते हमें अन्तर्राष्ट्रीय मामलों में जिस स्वतंत्रता का अधिकार है उसका इस कार्य से अपहरण हो जायेगा।

चौथी बात जो इस घोषणा के विरोधियों ने कही है वह यह है। यद्यपि हम स्वतंत्र हो गये हैं। परन्तु फिर भी हम ब्रिटिश वैदेशिक विभाग का दामन पकड़े हुए हैं और हमने अपने को ब्रिटिश साम्राज्यवाद तथा ब्रिटिश वैदेशिक नीति के रथ के साथ बांध दिया है।

पांचवीं बात जो इस घोषणा के विरोधियों ने कही है वह यह है कि सम्राट की प्रमुखता की जनतंत्र से ठीक संगति नहीं बैठती। छठी बात उन्होंने राष्ट्रमंडल के देशों में जातीयता के सम्बन्ध में कहीं है।

घोषणा के विरोधियों ने जो कुछ कहा है उसमें मुझे मुख्यतः यही छः आधारभूत बातें दिखाई देती हैं और मैं इनको एक-एक करके उठाऊंगा।

मैं सर्वप्रथम इस पर विचार करूंगा कि राष्ट्रमण्डल के देशों से यह गठबन्धन हमारी परम्परा के विरुद्ध है...

***एक माननीय सदस्यः** अवश्य ही।

***पं. बालकृष्ण शर्माः** मेरे माननीय मित्र ने बिना अपने विघ्न का अर्थ समझे हुए ही बड़ी बहादुरी से कह दिया है 'अवश्य ही'। यदि वे एक क्षण के लिये मेरी बातें सुनें तो उन्हें ज्ञात हो जायेगा कि उन्होंने जिस बात को अवश्य ही ठीक कहा है वह उतनी ठीक नहीं है। हमें हमारे नेता के उस भाषण का स्मरण कराया गया है जो उन्होंने सन् 1937 में धारा सभाओं के सदस्यों के सम्मेलन में दिया था और मेरे मित्र प्रोफेसर शिब्बनलाल सक्सेना ने यह कहा है कि निश्चित रूप से हमारी यह नीति निर्धारित की गई है कि ब्रिटिश साम्राज्यवाद से हम किसी प्रकार का सम्बन्ध न रखेंगे और यह कि अंग्रेजों से हर प्रकार सम्बन्ध विच्छेद करना ही है और यह कि हमारे नेता ने सम्बन्ध विच्छेद के अपने प्रख्यात सन्देश में यह कहा था कि हम ब्रिटिश वैदेशिक विभाग का दामन पकड़े रहना नहीं चाहते और न वैदेशिक मामलों में व्हाइट हाल से पथप्रदर्शन चाहते हैं।

जब हम इन सभी आपत्तियों पर विचार करने लगते हैं तो यह स्पष्ट हो जाता है कि अंग्रेजों से सम्बन्ध रखने में हमें जिन बातों के बारे में आपत्ति थी उनका इस घोषणा से कोई सम्बन्ध नहीं है। जब हमने अंग्रेजों से इस सम्बन्ध के बारे में आपत्ति की थी तो हमने अंग्रेजों के प्रभुत्व के बारे में आपत्ति की थी और हमारी इच्छा के विरुद्ध हमारा पथप्रदर्शन करने और हमें वचनबद्ध करने पर आपत्ति की थी जिसमें वे इतने आगे बढ़ गये थे कि नं. 10 डाउनिंग स्ट्रीट अथवा पार्लियामेंटों की जननी के ही आदेश से हमसे बिना परामर्श लिये हुए ही हमें एक महायुद्ध में घसीट दिया गया। इस घोषणा में इस प्रकार की कोई बात नहीं है। बार-बार यह कहा गया है कि हम अपनी वैदेशिक नीति के सम्बन्ध में तथा आन्तरिक मामलों के सम्बन्ध में स्वतंत्र हैं और जो चाहे कर सकते हैं। इस स्थिति में मेरी समझ में नहीं आता कि राष्ट्रमण्डल के प्रधानमंत्रियों के सम्मेलन की घोषणा के विरुद्ध जो मत प्रकट किया गया है उसका समर्थन करने के लिये भारतीय राष्ट्र के नेता की हैसियत से हमारे प्रधानमंत्री की की हुई घोषणाओं को अथवा अखिल भारतीय कांग्रेस समिति अथवा कांग्रेस के प्रस्तावों को उद्धृत करना कहां तक ठीक है। आज स्थिति बिल्कुल बदल गई है। अब अंग्रेजों से हमारा वह सम्बन्ध नहीं रह गया है जो पहले था। पहले के सम्बन्ध पर ही हमको आपत्ति थी न कि उस सम्बन्ध से जिसकी कल्पना इस घोषणा में की गई है।

दूसरी आपत्ति अर्थात् यह कि हम ब्रिटिश साम्राज्यवाद से एक अपवित्र गठबन्धन करने जा रहे हैं मुझे बिल्कुल निराधार प्रतीत होता है। जब मेरे मित्र ब्रिटिश साम्राज्यवाद के सम्बन्ध में सोचने लगते हैं तो उनकी यह धारणा होती है कि उपनिवेशों में ब्रिटेन जो कुछ कर रहा है उसमें हम भी हाथ बटायेंगे। मैं आपसे यह कहना चाहता हूं कि यह बात

नहीं है। उससे हमारा कोई भी सम्बन्ध नहीं है। अंग्रेज मलाया में जो कुछ कर रहे हैं अथवा डच इंडोनेशिया में जो कुछ कर रहे हैं अथवा फ्रांसीसी हिंदचीन में जो कुछ कर रहे हैं उसका हम विरोध कर सकते हैं। हमारा देश अभी एक उपनिवेश होते हुए भी, जबकि हमने अपने लक्ष्य सम्बन्धी प्रस्ताव के अतिरिक्त और कहीं भी अपने देश को सर्वसत्ताधारी गणराज्य घोषित नहीं किया है (क्योंकि हम इस समय विधान निर्माण कार्य के मध्य में हैं) क्या हमने उपनिवेश का बीड़ा नहीं उठाया है और राष्ट्रसंघ में तथा संसार में उनके लिये संघर्ष नहीं किया है? क्या उन उत्पीड़ित राष्ट्रों के लिये संघर्ष करने में हमें ब्रिटिश सरकार से सम्बन्ध रखने से कोई बाधा पहुंची है? यदि नहीं पहुंची है तो यह कहना कि राष्ट्रमण्डल के देशों से सम्बन्ध स्थापित करके हम ब्रिटिश वैदेशिक नीति का अनुसरण करेंगे अथवा ब्रिटिश साम्राज्यवाद के हाथ में कठपुतली हो जायेंगे बिल्कुल निराधार है। मैं यह कहूंगा कि यह बिल्कुल असत्य है।

तीसरी बात एंग्लो-अमेरिकन गुट में सम्मिलित होने के बारे में है। मेरे विचार से हम किसी भी गुट में नहीं सम्मिलित होने जा रहे हैं। हमारे वैदेशिक विभाग के मंत्री महोदय ने, जो हमारे प्रधानमंत्री भी हैं, असंख्य बार कहा है कि हमारी वैदेशिक नीति का विकास हो रहा है और जहां तक सम्भव है हम सभी गुटों से अलग रहने का प्रयास कर रहे हैं। हम इस मद को स्वीकार नहीं कर रहे हैं कि हमें सीधे-सीधे एंग्लो-अमेरिकन गुट में सम्मिलित हो जाना चाहिये। कुछ लोग ऐसे हैं जिन्होंने प्रधानमंत्री की वैदेशिक नीति की इस आधार पर आलोचना की है कि हमें सीधे-सीधे एंग्लो-अमेरिकन गुट में सम्मिलित हो जाना चाहिये या और कुछ लोगों की यह धारणा है कि हमें रूसी गुट में सम्मिलित हो जाना चाहिये था। किन्तु हम अभी तक इन गुटों से बिल्कुल अलग रहे हैं। इसका परिणाम यह हुआ है कि संयुक्त राष्ट्र संघ में भले ही हमारी आवाज कमजोर हो परन्तु वह आदरपूर्वक सुनी जाने लगी है और ऐसे क्षेत्रों में भी जहां हमको किसी न किसी गुट के साथ जुड़ा हुआ समझा जाता है और नीची निगाह से देखा जाता है हमारे दृष्टिकोण पर आदरपूर्वक विचार किया जाने लगा है। इसलिये यह आलोचना कि हम अमुक-अमुक गुट में सम्मिलित हो रहे हैं बिल्कुल निराधार है। मेरे मित्र प्रोफेसर शिब्बनलाल सक्सेना ने कहा है कि ''एशिया का एक तिहाई भाग रूस का अंग है, चीन साम्यवादी हो गया है और बर्मा, मलाया और इंडोनेशिया साम्यवादी होते जा रहे हैं। ऐसी घड़ी में हम तथाकथित एंग्लो-अमेरिकन गुट में क्यों सम्मिलित हुए हैं?'' पहले तो उनकी बातें निराधार हैं। हम किसी भी गुट में सम्मिलित नहीं हुए हैं। इसके अतिरिक्त आखिर उनका आशय क्या है? चूंकि चीन साम्यवादी हो गया है और एशिया का एक-तिहाई भाग साम्यवादी है तथा इंडोनेशिया, मलाया और बर्मा भी साम्यवादी होने जा रहे हैं, क्या हमें भी साम्यवादी होने का प्रयास करना चाहिये? क्या उनका अर्थ यह है कि चूंकि हमारे पड़ौसी साम्यवादी होने

[पं. बालकृष्ण शर्मा]

जा रहे हैं इसलिये हमें भी साम्यवादी हो जाना चाहिये? श्रीमान्, यदि कोई मुझे यह विश्वास दिला दे कि हमारे साम्यवादी होने से देश का तथा मानवमात्र का हितसाधान होगा तो मैं सर्वप्रथम इस दिशा में आगे बढ़ूंगा। किन्तु हमने रूस की वैदेशिक तथा आन्तरिक नीति के बारे में जो कुछ पढ़ा है उससे दुर्भाग्य से यह विश्वास हो जाता है कि अन्ततोगत्वा उससे पददलित लोगों का अथवा संसार का कल्याण न होगा। आखिर क्यों? क्योंकि उनका अन्य लोगों से आधारभूत मतभेद है और इस मतभेद की उत्पत्ति साम्यवाद की विचारधारा से ही होती है। जब तथाकथित वैज्ञानिक समाजवाद की चर्चा होती है तो मुझे यह कहना पड़ता है कि यह वैज्ञानिक समाजवाद बिल्कुल ही खोखली चीज है क्योंकि 19वीं शताब्दी की विज्ञान की कल्पना पर आधृत वैज्ञानिक विचारधारा अब वैज्ञानिक नहीं रह गई है। तबसे विज्ञान इतना बदल गया है कि उस समय के और अब के विज्ञान में कोई समानता नहीं रह गई है। 19वीं शताब्दी के विज्ञान में अनिश्चितता के सिद्धान्त का कोई स्थान नहीं था। किन्तु आज का विज्ञान यह घोषणा करता है कि एक इलेक्ट्रन के सम्बन्ध में सब बातें तो दूर रहीं कुछ भी बातें नहीं जानी जा सकती। तथाकथित वैज्ञानिक समाजवाद कुछ पूर्व निश्चित धारणाओं के आधार पर अर्थात् भौतिकवाद के आधार पर मनुष्य के सभी कार्यों की व्याख्या करता है। आखिर यह भौतिकवाद है क्या? आज भौतिकवाद का लोप हो रहा है और उसका स्थान गणित के सूत्र ले रहे हैं किन्तु फिर भी वैज्ञानिक समाजवाद की चर्चा की जाती है। श्रीमान्, मेरा यह कहना है कि वह न वैज्ञानिक है और न सामाजिक। मैं तो यह कहूंगा कि वह समाज विरोधी है क्योंकि शासन के पिशाच के सम्मुख व्यक्ति के जीवन के प्रत्येक क्षण का बलिदान किया जाता है।

इसलिए मेरा यह कहना है कि यदि हम समाजवाद अथवा साम्यवाद के आधारभूत सिद्धान्तों से सहमत हो सकते तो हम उन्हें सर्वप्रथम अंगीकार करते। किन्तु दुर्भाग्य से हम यह देखते हैं कि अवैज्ञानिक और असामयिक है। इसी कारण हम रूसी गुट में सम्मिलित नहीं होने जा रहे हैं और न तथाकथित एंग्लो-अमेरिकन गुट में सम्मिलित होने जा रहे हैं। हमें इसकी पूर्ण स्वतंत्रता है कि हम जैसे भी चाहे अपनी वैदेशिक नीति निश्चित करें और मेरी समझ में नहीं आता कि इस सभा के सम्मुख जो प्रस्ताव है उसके विरुद्ध लोग यहां अनेक प्रकार के तर्क क्यों उपस्थित करते हैं।

इस सभा से मैं एक बात यह कहना चाहता हूं कि वर्तमान काल में, जैसा कि प्रख्यात दार्शनिक हर्बर्ट स्पेन्सर ने कहा है कि परम्परागत धारणा के आधार पर विचार करने से काम नहीं चलेगा। धारणायें कई प्रकार की होती हैं जैसे कि परम्परागत धारणा, धार्मिक धारणा और वैज्ञानिक धारणा भी। नि:संदेह हमारा पूर्ण इतिहास, इंग्लैंड के साथ हमारे पिछले

28 वर्षों के संग्राम का इतिहास, ब्रिटेन विरोधी भावनाओं से परिपूर्ण है। किन्तु क्या राष्ट्रपिता ने हमको यह शिक्षा नहीं दी है कि हम किसी प्रणाली से भले ही घृणा करें परन्तु उसके रचियताओं से हम घृणा न करें? किन्तु आज हमने उस प्रणाली को, जिससे हम घृणा करते थे, उन्हीं लोगों से बदलवा दिया है जो उसका समर्थन करते थे और इसी लिये हम उनसे नाता जोड़ रहे हैं।

जैसा कि प्रधानमंत्री महोदय कह चुके हैं, हमने कोई वचन नहीं दिये हैं। हमने ब्रिटिश राष्ट्रमण्डल की वैदेशिक नीति को अंगीकार नहीं किया है। राष्ट्रमण्डल का कोई भी देश संयुक्त राष्ट्र संघ में जिस मार्ग का भी अवलम्बन करना चाहे कर सकता है। हमने यह किया है और आस्ट्रेलिया ने भी यह किया है। इसलिये बार-बार यह तर्क उपस्थित करना कि हम अपने को ब्रिटिश साम्राज्यवाद के रथ के साथ बांध रहे हैं बिल्कुल निरर्थक प्रतीत होता है।

श्रीमान्, मेरे मित्र श्री कामत ने कल जो भाषण दिया था उससे मैं बहुत प्रभावित हुआ। उन्होंने कुछ बहुत ही सारपूर्ण तथा तर्कपूर्ण प्रश्न पूछे थे। उन्होंने एक प्रश्न यह पूछा था कि क्या राष्ट्रमण्डल में सम्मिलित होने से हमें कोई लाभ होगा? हमने इस नीति का समर्थन इस सभा में ही नहीं किया बल्कि कांग्रेस के महान संगठन में भी किया। हमने आंखें खोलकर सब बातें देखी और अपने प्रधानमंत्री को इस प्रकार की बातचीत करने का अधिकार दिया। क्या हमने उस समय इसके पक्ष में और विपक्ष में सभी बातों पर विचार नहीं कर लिया था? हमने यह सब कुछ जान बूझकर किया और हम यह भी जानते हैं कि इससे हमें अवश्य ही लाभ होगा। आखिर हमारे देश का सैनिक विज्ञान अभी शैशवावस्था में ही है और अपनी रक्षा के सम्बन्ध में ब्रिटेन से नाता जोड़कर हमें बहुत लाभ होगा। इसके अतिरिक्त आर्थिक पुनर्निर्माण के सम्बन्ध में हमने बहुत सी बातें करनी हैं और इनके बारे में हमें ब्रिटेन तथा राष्ट्रमण्डल के अन्य देशों के विशेषज्ञों से परामर्श प्राप्त हो सकता है और वे हमारा पथप्रदर्शन कर सकते हैं। हम अपने को उस लाभ से क्यों वंचित करें विशेषत: जबकि सम्राट का इसके अतिरिक्त और कोई स्थान नहीं है कि उसे राष्ट्रमण्डल का प्रमुख माना गया है जिसका महत्त्व अधिक नहीं है क्योंकि अब वह हमारे आन्तरिक शासन में हस्तक्षेप नहीं कर सकेगा। हमारे देशदूत उनके नाम से नियुक्त नहीं होंगे। वे हमारे राज्य के प्रमुख के नाम से अर्थात् राष्ट्रपति के नाम से नियुक्त होंगे।

इन सभी बातों पर विचार करने के उपरान्त मेरे विचार से हमें अपने प्रधानमंत्री को राष्ट्रमण्डल के सभी राजनीतियों को एक ऐसी बात पर राजी कर लेने के लिये धन्यवाद देना चाहिये जो हमारे लिये हर प्रकार लाभप्रद है।

इन शब्दों के साथ, श्रीमान्, मैं इस सभा से यह सिफारिश करता हूं कि माननीय प्रधानमंत्री के प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया जाये।

***मौलाना हसरत मोहानी** (संयुक्तप्रान्त : मुस्लिम): श्रीमान्, मैं अपने मित्र प्रोफेसर शिब्बनलाल सक्सेना और श्री दामोदर स्वरूप सेठ का इन कारणों से समर्थन करने के लिये तैयार हूं। मैं भी सक्सेना का इस कारण समर्थन करता हूं कि उन्होंने अपने संशोधन द्वारा वही तर्क उपस्थित किया है जो मैंने आरम्भ में इस सभा के पहले अधिवेशन में ही प्रस्तुत किया था। उस समय मैंने कहा था और मैं इस समय भी यह कहता हूं कि इस सभा को इस प्रकार के विधान को बनाने का अधिकार नहीं है। क्योंकि इसका निर्वाचन बहुत ही संकुचित निर्वाचन मण्डल के आधार पर हुआ था जिसका स्वरूप साम्प्रदायिक था, घोरतम साम्प्रदायिक था और इसका यह परिणाम हुआ है कि इस सभा में एक ही दल का प्रभुत्व है। इसलिये यह एक बहुत ही अनर्गल बात है कि इसे विधान निर्माण की शक्ति दी जाये। केवल उसी दल का यहां अस्तित्व है और वह एक ही दृष्टिकोण को उपस्थित करता है। जब मैं यह कहता हूं और जब मेरी यह सम्मति है कि इस सभा को विधान बनाने का अधिकार नहीं है तो इसका स्पष्ट अर्थ यही है कि मैं श्री सक्सेना का समर्थन करता हूं जो वही बात चाहते हैं जिसे मैं चाहता हूं। वे यह कहते हैं कि आप अपने अन्तिम उद्देश्य तथा अन्तिम नीति की घोषणा उस समय तक न कीजिये जब तक कि संयुक्त निर्वाचक-मंडलों के सिद्धांत के विस्तृत आधार पर एक नई सभा का निर्वाचन न हो जाये।

श्रीमान्, मैं अपने मित्र श्री दामोदर स्वरूप का इस कारण समर्थन करता हूं कि मैं प्रधानमंत्री महोदय के बनाए हुए बहाने का निराकरण करना चाहता हूं। उन्होंने कहा है कि ''अच्छी बात है हमारा देश गणराज्य हो जायेगा परन्तु हम अलग नहीं रह सकते हैं। हमें किसी शक्ति के साथ किसी न किसी प्रकार का सम्बन्ध स्थापित करना ही होगा''। यह बात मेरी समझ में आती है। परन्तु मैं यह तर्क उपस्थित कर सकता हूं कि ''यह कैसी बात है कि आप केवल ब्रिटिश राष्ट्रमण्डल के लोगों को ही खुश करना चाहते हैं? आप ईमानदारी के सीधे रास्ते पर क्यों नहीं चलते हैं? जब आपका यह दावा है कि आपका देश स्वतंत्र समाजवादी गणराज्य है तो आप यह क्यों नहीं कहते हैं कि आप सभी स्वतंत्र देशों से पृथक् सन्धियां तथा समझौते करेंगे और ऐसा करने में उस सिद्धान्त का अनुसरण करेंगे जिसे स्वर्गीय लोकमान्य तिलक के राजनैतिक दल ने निश्चित किया था। स्वर्गीय लोकमान्य तिलक ने कहा था कि वे सभी स्वतंत्र देशों से परस्पर सहयोग के आधार पर सन्धि करेंगे और केवल उन्हीं स्वतंत्र देशों से सहयोग करेंगे जो हमारे देश से सहयोग करने के लिये तैयार होंगे। दक्षिण अफ्रीका जैसे देश से सन्धि करने से कोई लाभ न होगा। हमारे देशवासियों के प्रति उस देश का व्यवहार सर्वविदित है। कनाडा, आस्ट्रेलिया और न्यूजीलैंड जैसे देश भी भारतीयों को अपनी भूमि में कदम नहीं रखने देते। ऐसे लोगों

के पास जाकर हम कैसे सन्धि कर सकते हैं? मेरी समझ में नहीं आता कि माननीय प्रधानमंत्री के समान प्रखर बुद्धि पुरुष किस प्रकार दक्षिण अफ्रीका, कनाडा, आस्ट्रेलिया और न्यूजीलैंड जैसे देशों से सन्धि कर सकते हैं? मेरे विचार से इस प्रकार की सन्धियों से हमारे सम्मान की हानि होती है। हमें इन देशों के साथ किसी प्रकार का सम्बन्ध न रखना चाहिये। वास्तव में एक समय हमने इनसे सम्बन्ध-विच्छेद कर दिया था। हमने दक्षिण अफ्रीका से अपने प्रतिनिधि को वापस बुला लिया था। अब हम उस नीति को उलट रहे हैं और समझौते की नीति का अनुसरण कर रहे हैं जब मैंने समाचार पत्रों में यह पढ़ा कि हमारे प्रधानमंत्री की डॉ. मलान और मि. चर्चिल से मैत्री हो गई है तो मेरा सिर शर्म से झुक गया। जब वे इंग्लैंड गये तो भारतीय स्वतंत्रता के इन जन्मजात शत्रुओं के साथ में रहे। मेरी समझ में नहीं आता कि हमारे प्रधानमंत्री के विचारों में इस प्रकार का परिवर्तन कैसे हो गया। उन्हें मि. चर्चिल से मिलना ही नहीं चाहिये था और बोलना ही नहीं चाहिये था। उन्हें डा. मलान जैसे लोगों के बीच में नहीं जाना चाहिये था। मुझे जिस बात का डर था वही सच निकली क्योंकि मैं यह देखता हूं कि इन सम्मेलनों के बाद उनका दृष्टिकोण ही बदल गया है। पहले मि. चर्चिल हमारे प्रधानमंत्री के दृष्टिकोण की निन्दा करते थे। अब वे भी बदल गये हैं यह निश्चित ही इसका द्योतक है कि हम ठीक रास्ते पर नहीं चल रहे हैं। जब हमारी किसी नीति की प्रशंसा मि. चर्चिल और डॉ. मलान जैसे लोग करने लगते हैं तो हमें उसकी अनर्गलता सिद्ध करने के लिये अन्य किसी प्रमाण की आवश्यकता नहीं रह जाती। इसीलिये मैं इन दोनों संशोधनों का समर्थन करता हूं। इसके अतिरिक्त मैं यह अनुभव करता हूं कि हमारे मित्र प्रधानमंत्री महोदय ने दुर्भाग्य से जो घोषणा की है उसके अनुसमर्थन के उद्देश्य से जो प्रस्ताव रखा गया है उसके सम्बन्ध में कोई संशोधन उपस्थित करना निरर्थक है। उसमें किसी प्रकार का संशोधन नहीं हो सकता। उसका तो अन्त ही होना चाहिये। उसमें संशोधन होने की कोई सम्भावना नहीं है। इस घोषणा में यह कहा गया है कि भारत राष्ट्रमण्डल का पूर्ण अर्थ में सदस्य बना रहेगा और यह भी कहा गया है कि सम्राट राष्ट्रमण्डल का प्रमुख होगा। जब आप पूर्ण अर्थ में राष्ट्रमण्डल के सदस्य होने जा रहे हैं तो आप सम्राट को राष्ट्रमण्डल का प्रमुख कैसे नहीं मानेंगे? इसलिये सम्राट भारतीय गणराज्य का भी प्रमुख होगा। यह बात मेरी समझ में नहीं आती है। मैं अर्थवाद का आदी नहीं हूं और न मैं बहुत बारीक अन्तर करने के पक्ष में हूं। या तो आप राष्ट्रमण्डल में सम्मिलित होते हैं या नहीं होते हैं। मैं किसी ऐसे पिशाच का स्वागत नहीं कर सकता जो गणराज्य भी हो और उपनिवेश भी! यह प्रत्यक्षत: एक अनर्गल बात है। इसीलिये मैं यह कह रहा हूं कि इस प्रस्ताव के सम्बन्ध में हमें किसी संशोधन को उपस्थित करने की आवश्यकता नहीं है। ऐसा करना निरर्थक है। हमें इस घोषणा को तथा इस प्रस्ताव को एकदम रद्द कर देना चाहिये और समय के

[मौलाना हसरत मोहानी]

लिये कुछ नहीं छोड़ना चाहिये। मेरे मित्र तथा सहयोगी श्री शरत् बोस ने इस घोषणा के बारे में कहा है कि यह एक बहुत बड़ी धोखेबाजी है और मैं उनके इस मत से पूर्णतया सहमत हूं। मैं उनसे एक कदम आगे बढ़कर यह कहना चाहता हूं कि यह न केवल भारतीय स्वतंत्रता के प्रति धोखेबाजी है किन्तु एशिया के उन सभी देशों के प्रयत्नों के प्रति भी धोखेबाजी है जो अपनी स्वतंत्रता प्राप्ति के लिये सचेष्ट हैं। हमारे सामने वियतनाम, इण्डोनेशिया और बर्मा के उदाहरण हैं। हमारे प्रतिनिधिमण्डल के सदस्य इण्डोनेशिया और बर्मा पर भी इसी प्रकार की चीज लादना चाहते हैं। मेरी तो समझ में नहीं आता कि हमारे प्रधानमंत्री जैसे लोगों ने अपने दृष्टिकोण को क्यों बदल दिया है। जब इण्डोनेशिया के प्रधान ने, जिनका इस प्रकार की धोखे की टट्टी में विश्वास नहीं है, यह कहा कि जोगजाकार्टा में गणराज्य स्थापित करने से कम किसी बात को वे स्वीकार नहीं कर सकते हैं और जब तक वह स्थापित न हो जायेगा वे किसी प्रकार की सन्धि न करेंगे तो इस प्रस्ताव के पक्ष में उन्हें सोवियत रूस का समर्थन प्राप्त हुआ परन्तु मेरी समझ में नहीं आता कि हमारे प्रतिनिधि ने क्यों हस्तक्षेप किया और प्रस्ताव को अनिश्चितकाल के लिये स्थगित करवा दिया। मुझे यह सन्देह है कि इण्डोनेशी लोगों को भी उसी मार्ग पर चलने के लिये बाध्य किया जा रहा है जिसका अवलम्बन हमारे प्रधानमंत्री ने किया है। हालैंड भी इण्डोनेशी गणराज्य को इस शर्त पर स्वीकार करने के लिये तैयार है कि वह डच उपनिवेश का अंग बना रहे। यूरोपीय राष्ट्र हमें बेवकूफ बना रहे हैं। हालैंड इण्डोनेशी लोगों को बेवकूफ बनाना चाहता है। वे कहते हैं कि वे इण्डोनेशी गणराज्य को इस शर्त पर स्वीकार करने के लिये तैयार हैं कि वह उनके साम्राज्य का अंग बना रहे। वियतनाम के लोगों से फ्रांस भी यही कहता है। वह कहता है अच्छी बात है, आपके गणराज्य को स्वीकार किया जा सकता है परन्तु इस शर्त पर कि वह फ्रांसीसी साम्राज्य का अंग बना रहे। मैं यह देखता हूं कि इन साम्राज्यवादियों ने नई नई पदावलियां तथा कलासम्बन्धी शब्द गढ़ लिये हैं। ये शब्द हैं क्या? कभी वे औपनिवेशिक गणराज्य शब्दों को प्रयोग में लाते हैं। हमारे प्रधानमंत्री इन्हें स्वीकार करने जा रहे हैं। वियतनाम और अन्य देशों में भी औपनिवेशिक गणराज्य स्थापित होने जा रहे हैं। इन शब्दों का अर्थ मेरी समझ में नहीं आता। ये मेरी समझ के बाहर हैं। इस प्रस्ताव में और इस घोषणा में मैं इन शब्दों को स्वीकार करने के अतिरिक्त और कुछ नहीं देखता। जैसा कि मैं कह चुका हूं, बर्मा के सम्बन्ध में भी यह लोग हस्तक्षेप करने के लिये तैयार हैं और इस प्रकार बर्मा की सहायता करना चाहते हैं। बर्मा के लोगों ने इस सारे प्रस्ताव को अस्वीकार करके बुद्धिमत्ता का

परिचय दिया क्योंकि उन्हें यह सन्देह था कि हम और अंग्रेज उनके देश जायेंगे और उनसे उसी नीति को अंगीकार करने के लिये कहेंगे जिसे हम स्वीकार करने जा रहे हैं। उसका केवल यही अर्थ होता है कि हम उनकी सहायता करने के लिये तत्पर हैं परन्तु शर्त यह है कि वे ब्रिटिश साम्राज्य में सम्मिलित हो जायें। यदि आपने यह कहा भी न हो तो कम से कम इसका अर्थ तो यही निकलता है। बर्मा, मलाया और इण्डोनेशिया के सम्बन्ध में हम किसी भी निर्णय को स्थगित कराने का प्रयास कर रहे हैं। हम एक दूषित नीति का ही अनुसरण नहीं कर रहे हैं बल्कि भारतीय स्वतंत्रता के प्रति भी धोखेबाजी कर रहे हैं। हम एशिया के उन देशों के उद्देश्य के प्रति भी धोखेबाजी कर रहे हैं जो स्वतंत्रता प्राप्ति के लिये संघर्ष कर रहे हैं। आप अप्रत्यक्ष रूप से उन्हें उसी मार्ग पर चलने के लिये एक प्रकार से बाध्य कर रहे हैं जिसका अवलम्बन आपने किया है।

मैं प्रधानमंत्री से केवल दो प्रश्न पूछकर समाप्त कर दूंगा। मेरा पहला प्रश्न इस प्रकार है। यदि आप अलग नहीं रहना चाहते हैं और राष्ट्रमण्डल के देशों से सम्बन्ध स्थापित करना चाहते हैं तो यह कैसी बात है कि आप कोई भी शर्त नहीं रख रहे हैं? यदि आप किसी उपनिवेश से अथवा इंग्लैंड अथवा अमेरिका से सन्धि करना चाहते हैं तो आपको इसकी स्वतंत्रता है परन्तु शर्त यह है कि सब कुछ परस्पर सहयोग के सिद्धान्त के आधार पर किया जाये। दूसरा प्रश्न इस प्रकार है। हमारे प्रधानमंत्री कहते हैं कि हम बिल्कुल तटस्थ रहेंगे और यह कि एंग्लो-अमेरिकन गुट अथवा रूसी गुट में सम्मिलित न होंगे। यदि अन्त तक तटस्थ रहना सम्भव हो तो मुझे कुछ नहीं कहना है परन्तु यह हो सकता है कि तटस्थ रहना असम्भव हो जाये। आपको किसी न किसी गुट में सम्मिलित होना ही पड़े। ऐसी दशा में आपकी स्थिति क्या होगी? मैं केवल नकारात्मक आलोचना नहीं करना चाहता। मैं आपके सम्मुख एक रचनात्मक सुझाव रखना चाहता हूं। यदि कभी इस प्रकार की स्थिति उत्पन्न हो जाये तो हमें किसी भी गुट में सम्मिलित नहीं होना चाहिये। हमें उदार तटस्थता का दृष्टिकोण स्वीकार करना चाहिये किन्तु हमें इस उदार तटस्थता को रूस के पक्ष में प्रयोग में लाना चाहिये क्योंकि अमेरिका और इंग्लैंड साम्राज्यवादी और पूंजीवादी देश हैं। मेरी समझ में नहीं आता हमारे प्रधानमंत्री के समान दूरदर्शी पुरुष एंग्लो-अमेरिकन गुट में सम्मिलित होने के प्रस्ताव को सुनने के लिये भी क्यों तैयार हैं। क्योंकि वह गुट पूर्णतया साम्राज्यवादी और पूंजीवादी है। जहां तक सोवियत रूस का सम्बन्ध है, मेरा यह कहना है कि हमें उसका साथ देना चाहिये क्योंकि वह न तो पूंजीवादी है और न साम्राज्यवादी। इसलिये मेरा यह कहना है कि इस प्रस्ताव को बिना कोई संशोधन उपस्थित किये हुए ही अस्वीकार कर देना चाहिये।

***पं. हृदयनाथ कुंजरू** (संयुक्तप्रान्त : जनरल): अध्यक्ष महोदय, हमारे प्रधानमंत्री ने लन्दन में प्रधानमंत्रियों के पिछले सम्मेलन में जो समझौता किया है उसका मूल्यांकन करने के लिये हमें यह देखना है कि यह हमारे आत्मसम्मान के अनुरूप है या नहीं अथवा इससे हमारे राष्ट्र का हितसाधन होता है या नहीं। जब मैंने इस समझौते की वाक्यावलि पढ़ी तो मैंने यह अनुभव किया कि उससे ये दोनों शर्तें पूरी होती हैं और वास्तव में कल इसके विरोध में जो भाषण दिये गये उन्हें सुनकर मुझे इस सम्बन्ध में जितना विश्वास हुआ उतना पहले कभी नहीं हुआ था। श्रीमान्, इस समझौते की इस आधार पर आलोचना की गई है कि इससे भारत का कार्य स्वातंत्र्य अप्रत्यक्ष रूप से परिसीमित हो सकता है और वह एंग्लो-अमेरिकन गुट के निन्दनीय उद्देश्यों की पूर्ति में सहायक हो सकता है। उपनिवेश सम्राट के प्रति निष्ठा रखते हैं। किन्तु सन् 1926 से रस्मी तौर पर और सन् 1931 से कानूनी तौर पर यह स्वीकार किया गया है कि आन्तरिक तथा वैदेशिक सभी विषयों के सम्बन्ध में उनका वही पद है जो इंग्लैंड का है। पिछले युद्ध में आयरलैंड के तटस्थ रहने से यह अन्तिम रूप से प्रमाणित हो गया है कि यह समानता सच्चे अर्थ में समानता है। एक छोटा सा देश भी ऐसे विषयों के सम्बन्ध में स्वतंत्र निर्णय कर सका जिनका सम्बन्ध इंग्लैंड तथा उसके अधीनस्थ देशों के अस्तित्व से ही था जिससे यह प्रमाणित होता है कि संकटकाल में भी उपनिवेशों को अपने हितसाधन की दृष्टि से निर्णय करने की उतनी ही स्वतंत्रता है जितनी इंग्लैंड को। इस स्थिति में क्या यह भय निराधार नहीं है कि भारत को, जिसका अब ब्रिटिश सम्राट से कोई सम्बन्ध नहीं रहेगा, राष्ट्रमण्डल में रहने से अपने आन्तरिक तथा वैदशिक मामलों के सम्बन्ध में निर्णय करने की स्वतंत्रता उपनिवेशों से भी कम प्राप्त होगी? श्रीमान्, मेरे विचार से सैद्धान्तिक रूप से भी यह नहीं कहा जा सकता कि अपने हित साधन की दृष्टि से भारत को अत्यन्त महत्वपूर्ण विषयों के सम्बन्ध में भी निर्णय करने की जो स्वतंत्रता प्राप्त है वह इस समझौते से किसी प्रकार कम हो गई है।

श्रीमान्, अब मैं दूसरे तर्क को उठाता हूं। यदि एंग्लो-अमेरिकन गुट ऐसी नीति का अनुसरण करे जिससे छोटे राष्ट्रों की स्वतंत्रता का अपहरण हो और विश्व में शान्ति स्थापित न हो सके तो क्या हमारे देश के बराबर राष्ट्रमण्डल में रहने से वह इन अपराधों में प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप से योग देगा? बताया जाता है कि कल मेरे मित्र श्री कामत ने कहा था कि ब्रिटिश राष्ट्रमण्डल में रहने के बजाय वे उससे अलग रहना पसन्द करते हैं क्योंकि इस प्रकार के सम्बन्ध से इच्छा न होते हुए भी हम एंग्लो-अमेरिकन गुट की नीति से बंध जायेंगे। क्या पिछले तीस वर्षों का इतिहास यह प्रमाणित करता है कि अलग रहने से कोई देश संसार के सभी मामलों से सम्बन्ध विच्छेद कर सकता है? सवा सौ वर्ष तक अमेरिका ने अलग रहने की नीति का अकिया किया। उसने अपनी वैदेशिक नीति

इसी आधार पर निश्चित की। वह वाशिंगटन की विचारधारा का पोषण करता रहा किन्तु पहले विश्व युद्ध के छिड़ने के उपरान्त ही, भले ही वह यूरोपीय मामलों से सवा सौ वर्ष तक अगल रहा था और भले ही वह पश्चिमी गोलार्ध से बहुत दूर था, ऐसी घटनायें घटीं कि उसे मित्र देशों की सहायता के लिये युद्ध में प्रवेश करना पड़ा।

दूसरे विश्वयुद्ध का उदाहरण लीजिये। बहुत से अमेरिकन यह चाहते थे कि अमेरिका बिल्कुल तटस्थ रहे ताकि यूरोप में चाहे जो कुछ भी हो उसके फलस्वरूप उसे किसी गुट का सदस्य न समझा जाये किन्तु घटनाचक्र ने तथा उसके स्वार्थ ने और मित्र देशों से उसके सांस्कृतिक तथा राजनैतिक सम्बन्धों ने उसे मित्र देशों का पक्ष के कारण युद्ध प्रांगण में पदार्पण करने के लिये बाध्य कर दिया। इसलिये यह स्पष्ट है कि जो लोग यह कहते हैं कि अलग रहने से एंग्लो-अमेरिकन गुट की नीति से हमारा कोई सम्बन्ध न रहेगा किसी भ्रमवश ही ऐसा कहते हैं। किसी मृगमरीचिका के पीछे ही दौड़ रहे हैं और यदि उनका परामर्श स्वीकार किया गया तो राष्ट्रमण्डल से अलग रहने पर भी भारत घटनाक्रम से तो छुटकारा न पा सकेगा परन्तु उन राष्ट्रों के समान, जो संकोचवश अथवा दौर्बल्यवश निश्चय नहीं कर सकते हैं और अपनी नीति घोषित करने का साहस नहीं कर सकते हैं, उसे भी सभी कठिनाइयों का सामना करना पड़ेगा।

इसके अतिरिक्त, श्रीमान्, वे सदस्य भी भ्रम में हैं जिनका यह विचार है कि इस समझौते के पूर्व भारत तटस्थ नीति का अनुसरण कर रहा था। पिछले वर्ष इस प्रकार की सम्मति के लिये भले ही कोई आधार हो परन्तु इस वर्ष तो उसके लिये कोई आधार नहीं है। पिछले आयव्ययक सम्बन्धी वादानुवाद को समाप्त करते हुए प्रधानमंत्री ने भारत की वैदशिक नीति के सम्बन्ध में स्पष्ट शब्दों में कहा था कि वे किसी तटस्थ नीति का अनुसरण नहीं कर रहे हैं। वे केवल यह चाहते हैं कि भारत को संकटकाल में अपना मार्ग निश्चित करने की स्वतंत्रता होनी चाहिये। यदि इस सभा में कोई ऐसे सदस्य हों जो अपनी सरलतावश यह विश्वास करते हों कि संसार की घटनाओं से भारत अपना मुंह मोड़ सकता है और हम इस प्रकार आचरण कर सकते हैं जैसे हम किसी दूसरी दुनिया में वास करते हों तो उन्हें पिछले मार्च में ही प्रधानमंत्री के वक्तव्य पर आपत्ति करनी चाहिये थी। उस समय तो कोई आपत्ति नहीं की गई और उसे प्रसन्नतापूर्वक सुना गया परन्तु अब मेरी समझ में नहीं आता कि किस प्रकार यह कहा जाता है कि भारत को अलग रहने की नीति का अनुसरण करना चाहिये क्योंकि उस नीति से तो कोई लाभ होने वाला नहीं है। इसके विपरीत यदि किसी नीति से नुकसान हो सकता है तो इस प्रकार की नीति से ही हो सकता है। श्रीमान्, यदि मुझे इस विषय पर दो एक शब्द कहने की आज्ञा हो तो मैं यह कहना चाहता हूं कि इण्डोनेशिया के सम्बन्ध में, जिसे भारत से जितना नैतिक समर्थन प्राप्त हुआ है उतना संयुक्त राष्ट्र संगठन के अन्य किसी

[पं. हृदयनाथ कुंजरू]

देश से प्राप्त नहीं हुआ है, प्रधानमंत्री और भारत सरकार ने जिस नीति का अनुसरण किया है उससे यह प्रमाणित होता है कि अब भारत ब्रिटिश राजनीतिज्ञों अथवा राष्ट्रमण्डल के राजनीतिज्ञों के हाथ में एक कठपुतली नहीं रह गया है। भारत जानता है कि उसका हितसाधन किस प्रकार हो सकता है और वह अपने से बलवान राष्ट्रों का विरोध करके भी अपनी नीति का अनुसरण करने का साहस कर सकता है।

श्रीमान्, मुझे यह दिखाई देता है कि इस समझौते पर जो आपत्तियां की गई हैं वे इस विश्वास पर आधृत हैं कि राष्ट्रमण्डल में सम्मिलित होकर हम इंग्लैंड पर अथवा उपनिवेशों पर कृपा कर रहे हैं। मेरे विचार से यह बहुत बड़ी भूल है क्योंकि हमारा पद वही है जो अन्य किसी राष्ट्र का और संसार में हमारी प्रतिष्ठा तथा राजनैतिक स्थिति वही है जो बड़े-बड़े और समुन्नत राष्ट्रों की। निस्सन्देह भारत के राष्ट्रमण्डल में रहने से राष्ट्रमण्डल को लाभ होगा किन्तु यह भी स्पष्ट है कि भारत की सुरक्षा तथा उसके आर्थिक और वैज्ञानिक हितों की दृष्टि से कम से कम कुछ समय के लिये राष्ट्रमण्डल में रहकर उसे भी लाभ ही होगा। श्रीमान्, किसी भी अन्तर्राष्ट्रीय समझौते का अथवा व्यक्तियों के बीच भी किसी समझौते का उस समय तक कोई मूल्य नहीं है जब तक कि उससे सभी सम्बन्धित पक्षों को लाभ न हो। इसलिये इस समझौते के विरोध में, जो हमारे लिये लाभप्रद है, यह कैसे कहा जा सकता है कि इसके फलस्वरूप अब इंग्लैंड और राष्ट्रमण्डल के देश यह समझने लगेंगे कि भारत के राष्ट्रमण्डल में न रहने से जो उनकी स्थिति होती उससे अब उनकी स्थिति कहीं अधिक सुदृढ़ हो गई है? यदि हमें उद्योग धन्धों के सम्बन्ध में सहायता की आवश्यकता होती है तो हम इंग्लैंड के पास जाते हैं और यदि हम आर्थिक और सैनिक क्षेत्रों में वैज्ञानिक विकास के सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त करना चाहते हैं तो फिर भी इंग्लैंड ही के पास जाते हैं। यदि हमें शस्त्रों की आवश्यकता होती है और यदि हम अपने पदाधिकारियों को उच्च कोटि की सैनिक शिक्षा देना चाहते हैं तो हमें इंग्लैंड का ही ध्यान आता है। इस स्थिति में वास्तविकता को न देखकर यह सोचने से क्या लाभ होगा कि अन्य देशों को तो हमारी सहायता की आवश्यकता है परन्तु हम उनसे अलग रहकर अपने राष्ट्र के अस्तित्व को सुदृढ़ बनाये रखेंगे?

श्रीमान्, कल कुछ वक्ताओं ने, जो इस समझौते को बिल्कुल ही रद्द कर देने के पक्ष में नहीं थे, यह कहा था कि चूंकि इस सभा का चुनाव एक विशेष कार्य के लिये हुआ था इसलिये नैतिक दृष्टि से इसे इस समझौते का अनुसमर्थन करने का अधिकार प्राप्त नहीं है। वे यह चाहते हैं कि इस समझौते का अनुसमर्थन उस समय तक न किया जाये जब तक कि गणराज्य के विधा के अधीन एक नई सभा का निर्माण न हो जाये।

वास्तव में यह तर्क मेरी समझ में नहीं आता है। यदि हम यह समझते हैं कि इस समझौते से हमारी अन्तर्राष्ट्रीय प्रतिष्ठा गिर जाती है अथवा हमारे राष्ट्रीय हितों को हानि होती है, तो हमें उसे इसी समय अस्वीकार कर देना चाहिये। परन्तु यदि वह सभी प्रकार अच्छा है और यदि हम यह समझते हैं कि संसार की वर्तमान स्थिति में उससे केवल हमारा ही हितसाधन न होगा, बल्कि संसार में भी शान्ति स्थापित होगी और पूर्व तथा पश्चिम के बीच सामंजस्य उत्पन्न होगा और दो सभ्यताओं का गठबन्धन सम्भव हो सकेगा, तो हम इसका अनुसमर्थन उस समय तक के लिये क्यों स्थगित करें, जबकि एक नई सभा चुनाव के बाद अस्तित्व में आयेगी? यदि इस समय हमारे अनुसमर्थन करने से नई सभा इस समझौते को निन्दनीय ठहराने के अधिकार से वंचित हो जाती, तो इस तर्क में बहुत बल होता। आगे की सभा को इस सम्बन्ध में निर्णय करने की उतनी ही स्वतंत्रता प्राप्त होगी जितनी वर्तमान सभा को है। जहां तक मैं समझता हूं यद्यपि, भारत ने इंग्लैंड से एक सन्धि की है परन्तु वह बिना पहले सूचना दिये हुये भी राष्ट्रमण्डल को छोड़ सकता है। मैं प्रधानमंत्री महोदय के इस विचार से पूर्णतया सहमत हूं कि यदि भारत राष्ट्रमण्डल में सम्मिलित न होता और अन्य किसी राष्ट्र से सम्बन्ध जोड़ता, तो अन्तर्राष्ट्रीय जगत में उसकी अवश्य ही आलोचना की जाती। भारत ने जो कुछ किया है वह उसके स्वभाव के अनुरूप ही है। उसने कोई नई सन्धि करने का प्रयास नहीं किया है, बल्कि केवल ऐसे मित्रों से सम्बन्ध बनाये रखा है जो जनतंत्रात्मक आदर्शों से प्रेरित होते हैं और जिनकी भाषायें भिन्न होने पर भी सामाजिक, सांस्कृतिक और राजनैतिक विषयों के सम्बन्ध में साधारणतया जिनका दृष्टिकोण वही है जो भारत का।

श्रीमान्, मैं इस निर्णय के लिये प्रधानमंत्री महोदय को बधाई देता हूं और सभा से बिना किसी संकोच के यह अनुरोध करता हूं कि वह इस निर्णय का अनुसमर्थन करे, क्योंकि इससे भारत का हितसाधन होगा और विश्व में शान्ति स्थापित होगी।

***श्री के.एम. मुन्शी** (बम्बई : जनरल): अध्यक्ष महोदय, माननीय प्रधानमंत्री महोदय ने कल जिस प्रस्ताव को उपस्थित किया था, उसका समर्थन करने के लिये मैं उठा हूं। अन्त में बोलने वाले वक्ता महोदय ने उनकी ही महान विजय के लिये नहीं बल्कि भारत की विजय के लिये भी उन्हें जो बधाइयां दीं उनमें मैं अपना भी योग देना चाहता हूं। उनकी उदार राजनीतिज्ञता के कारण ही भारत आज राष्ट्रमण्डल में इंग्लैंड का सहयोगी बना हुआ है और केवल राष्ट्रमण्डल का अनुगामी नहीं बना हुआ है, जैसाकि कल एक वक्ता महोदय ने कहा था। हम ऐसे अन्य राष्ट्रों के भी साथी बन गये हैं जो जनतंत्रात्मक आदर्शों का आदर करते हैं और विश्व में शान्ति स्थापित करने के लिये सचेष्ट रहते हैं। इसलिये पंडित जी ने केवल अपनी ही प्रतिष्ठा नहीं बढ़ाई है, बल्कि भारत को भी संसार का

[श्री के.एम. मुन्शी]

नेतृत्व प्राप्त करा दिया है। मेरे विचार से इसके लिये वे इस सभा की ही नहीं बल्कि सारे देश की बधाइयों के पात्र हैं।

श्रीमान्, इस सम्बन्ध में पंडित जी ने जो समझौता किया है, उसका विरोध इस सभा में ही नहीं बल्कि बाहर भी कई कारणों से किया गया है। किन्तु जो तर्क उपस्थित किये गये हैं उनका यदि हम विश्लेषण करें तो उनके मूल में ब्रिटेन के प्रति अविश्वास की भावना ही प्रकट होती है। कई वर्षों तक, लगभग पचहत्तर वर्ष तक भारत ब्रिटेन को विरोध की ही दृष्टि से देखता रहा। इस प्रकार की भावना अभी मिटी नहीं है। इस समझौते की जो अभी आलोचना की गई है, उसका स्रोत यही पुरानी भावना है कि ब्रिटेन से किसी प्रकार का भी सम्बन्ध भारत के लिये अहितकर होगा। निस्सन्देह पहले ब्रिटेन से संघर्ष करने के लिये ही भारत में जनमत निर्मित किया गया, परन्तु अब स्थिति में परिवर्तन होने के कारण उसे भी बदलने की आवश्यकता है। अब यह विश्वास करने के लिये कोई कारण नहीं है कि कभी ऐसा समय भी आ सकता है, जबकि ब्रिटेन भारत में वही अधिकार प्राप्त कर लेगा, जो उसे 15 अगस्त से पूर्व प्राप्त था। आज सारे संसार में यह स्वीकार किया जाता है कि अब हम ब्रिटेन के शासन से पूर्णतया मुक्त हो गये हैं और हमारा देश अब ब्रिटिश साम्राज्य का अंग नहीं रह गया है। सारे संसार में यह भी स्वीकार किया जाता है कि एशिया में स्थिति को सुस्थिर रखने में तथा विश्व-शान्ति को बनाये रखने में इस भू-भाग में भारत ही सक्षम है। इसलिये मेरा यह निवेदन है कि ब्रिटेन से भय होने का अथवा उसके प्रति अविश्वास करने का कोई कारण नहीं है। माननीय प्रधानमंत्री महोदय ने जो प्रस्ताव उपस्थित किया है, उसके विरोध में जो तर्क प्रस्तुत किये गये हैं, उनका आधार इस प्रकार का अविश्वास ही है।

एक तर्क के सम्बन्ध में मैं कुछ शब्द कहना चाहता हूं। वह यह है कि राष्ट्रमण्डल पुराने ब्रिटिश राष्ट्रमण्डल का ही रूपान्तर है। यह तर्क न्यायसंगत नहीं है। ब्रिटिश राष्ट्रमण्डल का विस्तार तथा स्वरूप उस राष्ट्रमण्डल से बिल्कुल भिन्न था, जिसकी कल्पना इस घोषणा में की गई है। यह सभा इससे भली भांति परिचित है कि पुराने ब्रिटिश राष्ट्रमण्डल की अथवा ब्रिटिश राष्ट्रमण्डल की परिभाषा, जो इस समय अस्तित्व में है परन्तु जो 15 अगस्त को हमारे विधान के स्वीकार होने पर अस्तित्व में नहीं रहेगा, बालफूर घोषणा में इन शब्दों में की गई थी:

> ''ब्रिटिश साम्राज्य में स्वायत्तशासी जनसमुदाय, जिनका पद समान हो और जो स्वदेशीय अथवा वैदेशिक मामलों के सम्बन्ध में किसी प्रकार एक दूसरे के अधीन न हों, यद्यपि वे समान रूप से सम्राट के प्रति निष्ठा रखते हों और ब्रिटिश राष्ट्रमण्डल के स्वतंत्र सदस्य हों।...''

इसका एक भाग सुविदित वेस्टमिंस्टर के कानून का भी अंश है। जहां तक इस घोषणा का सम्बन्ध है उसमें इसका कोई अंश छोड़ नहीं दिया गया है। पहले तो जो राष्ट्र राष्ट्रमण्डल के सदस्य होंगे वे स्वतंत्र राष्ट्र होंगे। इस घोषणा में यही शब्द हैं। दूसरे वे सम्राट के प्रति समान रूप से निष्ठा नहीं रखेंगे। नये राष्ट्रमण्डल में यही सबसे महत्वपूर्ण बात है। यह सभी को विदित है कि ब्रिटिश राष्ट्रमण्डल का अस्तित्व 'एक सम्राट' पर निर्भर था। एक महान् वैधाानिक कानून विशेषज्ञ बेरिडेल कीथ की एक किताब में, मुझे स्मरण है, मैंने यह पढ़ा था कि एक सम्राट और सम्राट के प्रति निष्ठा के आधार पर ही ब्रिटिश राष्ट्रमण्डल टिका हुआ है और यदि ये मिट गये, तो ब्रिटिश राष्ट्रमण्डल का भी विघटन हो जायेगा। यह तो सच है ही कि नये राष्ट्रमण्डल में न तो सम्राट के प्रति निष्ठा है और न ब्रिटिश साम्राज्य के पुराने वैधानिक कानूनों में जिस 'एक सम्राट' का वर्णन है उसके लिये ही कोई स्थान है। उदाहरण के लिये, बालफूर की घोषणा में 'ब्रिटिश साम्राज्य' शब्दों को ही लीजिये। उस समय स्वतंत्र देश अर्थात् स्वायत्तशासी उपनिवेश अधिकतर जन्म से ही ब्रिटिश थे। आज हमारा अर्थात् भारतीय नागरिकों का नये राष्ट्रमण्डल में बहुमत है। उसमें अंग्रेजों का बहुमत नहीं होगा। ब्रिटिश साम्राज्य में और ब्रिटिश राष्ट्रमण्डल में सेना ही एक प्रकार की एकता स्थापित किये हुये थी और उसमें अधिकतर अंग्रेज ही थे, तथा सम्राट के नाम से उसका संचालन होता था। 15 अगस्त सन् 1947 के उपरान्त भारतीय सेना एक स्वतंत्र उपनिवेश की सेना हो गई और अगले 15 अगस्त से तो वह किसी अर्थ में सम्राट की सेना न रह जायेगी। अब भारत पर अंकुश रखने के लिये कोई ब्रिटिश सेना नहीं है। इस प्रकार इस सीमा तक वर्तमान व्यवस्था में तथा पुराने ब्रिटिश राष्ट्रमण्डल में कोई साम्य नहीं है।

इसके अतिरिक्त अब नये राष्ट्रमण्डल में 'एक सम्राट' नहीं रह गया है। ब्रिटिश राष्ट्रमण्डल का सैद्धांतिक आधार यह था कि एक सम्राट था और ब्रिटिश राष्ट्रमण्डल में विभिन्न विधान-मण्डल, सरकारें तथा न्यायालय सम्राट के नाम से बोलते थे और कार्य करते थे। अब इस राष्ट्रमण्डल में, जहां तक भारत का सम्बन्ध है, उसकी सरकार, उसका विधान-मण्डल और उसके न्यायालय गणराज्य के राष्ट्रपति के नाम से काम करेंगे और वह भारत के सर्वसत्ताधारी लोगों का प्रतिनिधि होगा। अब उस आधारभूत सिद्धान्त को लीजिये, जो ब्रिटिश राष्ट्रमण्डल में सन्निहित था। वह सिद्धान्त यह था कि सब शक्ति सम्राट में ही केन्द्रित है और कोई भी कानून उस समय तक प्रयोग में नहीं आ सकता, जब तक कि सम्राट उसके लिये स्वीकृति प्रदान न कर दे अथवा उसके नाम से स्वीकृति प्रदान न हो जाये। जहां तक भारत का सम्बन्ध है इस प्रकार की व्यवस्था अब नहीं रहेगी। 'एक सम्राट' जो पुराने राष्ट्रमण्डल का आधार था, अब नये राष्ट्रमण्डल में कोई स्थान नहीं

[श्री के.एम. मुन्शी]

पायेगा। इसलिये यह कहना कि पुराना ही राष्ट्रमण्डल नये नाम से जीवित रहेगा, ठीक नहीं है।

दूसरा सिद्धान्त जिस पर ब्रिटिश राष्ट्रमण्डल आधृत था, प्रत्येक नागरिक की सम्राट के प्रति निष्ठा का सिद्धान्त था। वेस्टमिंस्टर के कानून में सर्वप्रथम यह कहा गया है कि यह ब्रिटिश राष्ट्रमण्डल का आधारभूत सिद्धान्त है। नये राष्ट्रमण्डल में सम्राट के प्रति किसी प्रकार की निष्ठा नहीं रहेगी। निष्ठा का अर्थ यह होगा कि राष्ट्रमण्डल के प्रत्येक नागरिक का, चाहे वह जहां भी स्थित हो, सम्राट के साथ सम्बन्ध रहेगा। जहां तक भारत के नागरिकों का सम्बन्ध है, उनकी इंग्लैंड के सम्राट के प्रति किसी प्रकार की निष्ठा नहीं होगी। उनकी भारत के गणराज्य के प्रति निष्ठा रहेगी। नये राष्ट्रमण्डल में ब्रिटिश राष्ट्रमण्डल की बिल्कुल भी छाया नहीं पड़ी हुई है। इसलिये मेरा यह निवेदन है कि यह तर्क कि यह राष्ट्रमण्डल पुराने राष्ट्रमण्डल का ही रूपान्तर है, निराधार है।

इसमें कोई सन्देह नहीं कि पुराने ब्रिटिश राष्ट्रमण्डल के समान इस राष्ट्रमण्डल में भी सम्राट प्रतीक रूप में प्रमुख है। परन्तु माननीय प्रधानमंत्री ने यह स्पष्ट कर दिया है कि पुराने राष्ट्रमण्डल में सम्राट को राष्ट्रमण्डल के प्रमुख का पद प्राप्त था और इस रूप में वह कार्य करता था, किन्तु नये राष्ट्रमण्डल में उसे केवल यह पद ही प्राप्त है, परन्तु कोई कार्य नहीं सौंपा गया है। इस सीमा तक सम्राट स्वतंत्र सम्मिलन का प्रतीक रहेगा, परन्तु वह कोई कार्य नहीं करेगा और भारत का कोई नागरिक भी उसके प्रति निष्ठा नहीं रखेगा। जैसा कि घोषणा से मैं समझ पाया हूं, यह नया राष्ट्रमण्डल स्वतंत्र राष्ट्रों का स्वतंत्र सम्मिलन होगा और उसका प्रत्येक राष्ट्र स्वतंत्र रूप से अपने प्रादेशिक तथा अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध स्थापित कर सकेगा। समान हित और समान आदर्श ही उसे अन्य राष्ट्रों से सुसम्बद्ध रखेंगे। जैसा कि ब्रिटेन के प्रधानमंत्री मि. एटली ने हाल में कामन्स सभा में कहा था, उससे मुख्यतः यह लाभ होगा कि निकटस्थ होकर परस्पर परामर्श किया जा सकेगा और सहायता की जा सकेगी और सम्राट इस स्वतंत्र सम्मिलन का प्रतीक मात्र होगा।

इसलिये मेरा यह निवेदन है कि एक बिल्कुल नवीन विचारधारा ही इस राष्ट्रमण्डल के रूप में साकार हुई है और इस धारणा के लिये कोई आधार नहीं है कि यह राष्ट्रमण्डल पुराने राष्ट्रमण्डल का ही रूपान्तर है।

श्रीमान्, मुझसे पहले बोलने वाले कई वक्ता महोदयों ने इस राष्ट्रमण्डल का वर्णन उसी प्रकार किया है, जैसे प्राचीन पंडित ब्रह्म का 'नेति नेति' कहकर अर्थात् 'यह नहीं, यह नहीं'

कह कर किया करते थे। मेरा यह नम्र निवदेन है कि राष्ट्रमण्डल से एक वास्तविक लाभ होगा, यह निश्चित है। श्रीमान्, मेरा तो यह विचार है कि भारत के हितसाधन की दृष्टि से ही नहीं, बल्कि विश्व में शान्ति स्थापित करने के लिये भी इस प्रकार का सम्बन्ध स्थापित करना एक प्रकार से अनिवार्य था। श्रीमान्, आज भारत को संसार में शान्ति बनाये रखने की ही लगन है। हम अपने नव प्राप्त स्वातंत्र्य को सुव्यवस्थित तथा सुविस्तृत तभी कर सकते हैं जबकि कम से कम एक पीढ़ी तक संसार में शान्ति बनी रहे। इसलिये हमारी सबसे अधिक दिलचस्पी इसमें है कि हम विश्व-शान्ति को स्थायी रखने के लिये और कम से कम अपने भू-भाग में शान्ति बनाये रखने के लिये यथाशक्ति प्रयत्न करें। श्रीमान्, इस उद्देश्य की पूर्ति में भारत तब तक सहायक नहीं हो सकता है, जब तक कि वह राष्ट्रमण्डल के अन्य देशों से सम्बन्ध स्थापित नहीं करे। यही किया भी गया है। विश्व-शान्ति की चर्चा करना बहुत सरल है। हम वर्षों से सामूहिक सुरक्षा की चर्चा करते आये हैं। किन्तु सामूहिक सुरक्षा कोई ऐसा मन्त्र नहीं है, जिससे सर्प मोहित हो जायें और न वह कोई अफीम है जिससे लोग अकर्मण्य हो जायें। उसका अर्थ है विस्तृत रूप से राष्ट्रों के साथ तैयारी, रक्षा की तैयारी, शस्त्रों की कोटि का निश्चय, अनुसंधान का एकीकरण तथा सुव्यवस्था और औद्योगिक सहयोग। जैसा कि मैं समझ पाया हूं, राष्ट्रमण्डल की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि उससे ये सब लाभ सुलभ हो जायेंगे। सैनिक दृष्टि से भारत का हिन्दसागर पर प्रभुत्व है। परन्तु उसी दिशा से हमारे लिये संकट भी उपस्थित हो सकता है और साथ ही संकटकाल में अधिक से अधिक सहायता भी प्राप्त हो सकती है। हमें हिन्दसागर का विस्मरण न होना चाहिये, जिसकी एक छोर पर आस्ट्रेलिया और दूसरी छोर पर दक्षिण अफ्रीका रक्षा स्तम्भ के रूप में हैं। कोई भी सन्धि जिससे हिन्दसागर में रक्षा के लिये तैयारियां हो सकती हैं, भारत के लिये सबसे अधिक लाभप्रद सिद्ध होगी। इस दृष्टि से मैं यह समझता हूं कि इस राष्ट्रमण्डल का भारत के लिये तथा उसके भविष्य के लिये बहुत महत्त्व है।

श्रीमान्, प्रधानमंत्री कई बार कह चुके हैं कि अब इसके लिये समय नहीं है कि हम पहले के समान इंग्लैंड का अविश्वास करते रहें। ब्रिटेन और भारत डेढ़ सौ वर्ष तक एक ही संस्कृति तथा एक ही विचारधारा का पोषण करते रहे हैं और हमारी राजनैतिक तथा कानूनी संस्थायें ही एक समान नहीं रही हैं, बल्कि हम एक ही प्रकार के जनतंत्रात्मक आदर्शों का अनुसरण करते रहे हैं यदि हम कुछ वर्ष आगे की बात सोचें, तो मेरे विचार से विश्व-शान्ति के उद्देश्य से भारत और ब्रिटेन का सम्बन्ध सामूहिक सुरक्षा के लिये बहुत प्रभावपूर्ण सिद्ध होगा। इस दृष्टि से इस नवीन सन्धि के लिये तथा भारत का राष्ट्रमण्डल का सबसे अधिक प्रभावपूर्ण सदस्य होने के लिये यह सभा बधाई की पात्र है। इस दृष्टि से मेरे विचार से इस सभा को तथा देश को इस नवीन राष्ट्रमण्डल का स्वागत करना

[श्री के.एम. मुन्शी]

चाहिये और मुझे इस सम्बन्ध में कुछ भी सन्देह नहीं है कि यह सभा तथा हमारा देश उसे पूर्ण सहयोग प्रदान करेगा। श्रीमान्, मुझे इतना ही कहना है।

***प्रो. के.टी. शाह** (बिहार : जनरल): अध्यक्ष महोदय, सभा के नेता के इस प्रस्ताव को प्रस्तुत करने के उपरान्त तथा पंडित कुंजरू ने इसका प्रभावपूर्ण ढंग से समर्थन करने के उपरान्त इसका विरोध करने में संकोच का अनुभव होना स्वाभाविक ही है। किन्तु फिर भी तीन शीर्षकों के अधीन मैं इस सभा के सम्मुख कुछ तर्क उपस्थित करना चाहता हूं, जिनके आधार पर मेरे विचार से वह इस प्रस्ताव को अस्वीकार करना ही ठीक समझेगी।

श्रीमान्, मुझे तो इस प्रस्ताव का रूप ही आपत्तिजनक प्रतीत होता है। मैं यह कहता हूं कि यह शब्द 'अनुसमर्थन' आपत्तिजनक है। यह शब्द यह संकेत करता है कि किसी बात का पहले अधिकार दिया गया था और अब उसके अन्तिम रूप से अनुसमर्थन की आवश्यकता है। मुझे तो स्मरण नहीं होता कि इस प्रकार के कदम के लिये पहले कोई अधिकार दिया गया था और न मुझे कोई ऐसा वादानुवाद अथवा इस सभा का निश्चय ही स्मरण होता है, जिसके आधार पर इतना महत्त्वपूर्ण निर्णय किया जा सकता था और सभा से इस निर्णय के अनुसमर्थन के लिये कहा जा सकता था। मैं माननीय प्रधानमंत्री महोदय के इस विचार से सहमत हूं कि इसका या तो अनुसमर्थन किया जा सकता है या इसे अस्वीकार किया जा सकता है, परन्तु इसमें संशोधन करने की बहुत कम गुंजाइश है। कुछ मित्रों ने यह सुझाव रखा था कि इस प्रस्ताव को उस समय तक के लिये स्थगित रखा जाये, जब तक कि इस पर लोगों की राय न ले ली जाये। इस प्रकार के सुझाव सारपूर्ण हो सकते हैं, परन्तु मेरी यह धारणा है कि जिस प्रस्ताव के सम्बन्ध में इस सभा में न कोई विचार हुआ था और न कोई निश्चय किया गया था, उसका अनुसमर्थन करने के लिये उससे अनुरोध करना उससे सरकार के प्रमुख द्वारा की हुई डिग्री की रजिस्ट्री करने के लिये आग्रह करने के समान है।

इसके लिये मैं सिद्धान्ततः तैयार नहीं हूं। मेरे विचार से सभा के सम्मुख एक सम्पन्न कार्य को रखने और उसे स्वीकार अथवा अस्वीकार करने की मनोवृत्ति से उस स्वतंत्रता से न वादानुवाद हो सकेगा और न विभिन्न मतों का प्रकाश हो सकेगा, जो देश में जनतंत्रात्मक भावना उत्पन्न करने के लिये आवश्यक हैं।

मैं केवल इसी कारण इस सभा से इस प्रस्ताव को अस्वीकार करने के लिये नहीं कह रहा हूं। मेरे विचार से अन्य भी कई ऐसे कारण हैं, जिनका वैधानिक महत्त्व है,

जिनके आधार पर मैं यह कह सकता हूं कि यह प्रस्ताव असामयिक है, इसकी समझबूझ कर रचना नहीं की गई है और इससे देश को कोई विशेष लाभ होने की आशा नहीं है।

श्रीमान्, पहले तो हमसे यह कहा गया है कि स्वतंत्र राष्ट्रों के वर्तमान सम्मिलन में, जो अभी तक ब्रिटिश राष्ट्रमण्डल के नाम से विख्यात था और अब राष्ट्रमण्डल के नाम से कहा जाता है, कोई विशेष परिवर्तन नहीं हुआ है। यदि कोई परिवर्तन ही नहीं हुआ है तो इस प्रकार का समझौता करने की आवश्यकता ही कहा है? यदि प्रधानमंत्रियों की घोषणा के उपरान्त हमारी स्थिति वही है, जो पहले थी और हम सर्वसत्ताधारी तथा स्वतंत्र हैं और हमारे स्वदेशीय तथा वैदेशिक मामलों में बाहर से किसी प्रकार का प्रभाव न पड़ेगा, तो मेरी समझ में नहीं आता कि इस प्रकार का समझौता करने तथा इसके लिये वचनबद्ध होने की आवश्यकता ही क्या है। यदि यह समझौता हमें आगे नहीं बढ़ाता है और यदि हम इसके द्वारा कोई नवीन कार्य नहीं करते हैं, तो मेरे विचार से यह निरर्थक है। यदि इसके द्वारा हम कोई नवीन कार्य नहीं करते हैं, तो यह हमारे लिये खतरनाक सिद्ध होगा और इसे स्वीकार करने के पूर्व हमें सोच विचार कर लेना चाहिये। मेरे विचार से हमें इस प्रश्न पर विचार करना चाहिये और उसके उपरान्त ही इस प्रस्ताव को स्वीकार करना चाहिये। यदि कोई सारपूर्ण परिवर्तन नहीं हुआ है, तो मेरे विचार से इस समझौते को स्वीकार करना अनावश्यक है।

इसके अतिरिक्त हमसे कहा गया है कि विभिन्न स्वतंत्र राष्ट्रों के इस निश्रृंखल सम्मिलन अथवा संघ का प्रमुख, जो पहले ब्रिटिश राष्ट्रमण्डल अथवा ब्रिटिश साम्राज्य कहा जाता था और अब राष्ट्रमण्डल कहा जाता है, प्रतीक रूप से सम्राट होगा। यह भी सारपूर्ण है। मेरे विचार से जब हमने लक्ष्य सम्बन्धी प्रस्ताव स्वीकार किया था और जब हमने एक सर्वसत्ताधारी स्वतंत्र गणराज्य स्थापित करने का उद्देश्य घोषित किया था, तो हमने ब्रिटिश साम्राज्य से अपने सम्बन्ध के बारे में अन्तिम बात कह डाली थी। अब इस रूप में तथा इस अवसर पर सम्राट के नेतृत्व को सामने रखना अथवा प्रतीक रूप से भी इंग्लैंड के सम्राट के नेतृत्व को सामने रखना मेरे विचार से और कुछ नहीं तो कम से कम तर्क विरुद्ध तो है ही। अब ऐसा युग आया है जब हम अपने देश में ही सम्राटों को तथा सम्राटों के राज्यों को समाप्त कर रहे हैं, यद्यपि वे इंग्लैंड के सम्राट की उसके राज्य की तुलना में कई पीढ़ियों से चले आ रहे हैं और इस देश में उन्होंने दुराचार की शक्तियों से बहुत संघर्ष किया है।

श्रीमान्, मेरी यह इच्छा नहीं है कि मैं ब्रिटिश सम्राट का सम्बन्ध किसी दल विशेष से बताऊं। किन्तु मैं यह अवश्य कहना चाहता हूं कि इस देश में ऐसे सम्राट रहे हैं और अब भी हैं, जो अपने को श्री राम के वंशज कहते रहे हैं और जो इसका प्रमाण दे सकते हैं कि सहस्त्र वर्ष तक उन्होंने आक्रमण, दुराचार तथा दमन की शक्तियों से संघर्ष

[प्रो. के.टी. शाह]

किया था और उनके इस वीरतापूर्ण संघर्ष का देश सम्मान करता रहा है। इन प्राचीन काल की सत्ताओं के मिटने पर मैंने एक भी आंसू नहीं बहाया है, क्योंकि मेरा यह विश्वास है कि जनतंत्र के इस युग में राजसत्ता कोई स्थान नहीं पा सकती। मुझे इसका तनिक भी खेद नहीं है कि इस देश के प्राचीन वंशों के ये अवशेष तथा उनके उत्तराधिकारी एक के बाद एक लुप्त हो रहे हैं। मेरा तो यह विचार है कि देश में एकता लाने तथा जनतंत्रात्मक व्यवस्था स्थापित करने का जो काम वर्तमान सरकार ने किया है, वह उसका सबसे बड़ा काम है। परन्तु मैं यह पूछे बिना नहीं रह सकता कि जब इस सरकार ने इस प्रकार की ख्याति प्राप्त की है, तो फिर इस अवसर पर ब्रिटिश सम्राट को प्रतीक रूप से भी प्रमुख क्यों माना जाये?

श्रीमान्, हमसे कहा गया है कि कुछ ही समय पूर्व हम ब्रिटेन और वहां के निवासियों के विरोधी थे और उनको अविश्वास तथा सन्देह की दृष्टि से देखते थे, जिसके फलस्वरूप हमारी इस प्रकार की मनोवृत्ति हो गई है। मैं इसे स्वीकार करता हूं कि मैं इस दोष से मुक्त नहीं हुआ हूं, परन्तु इसके लिये मैं क्षमायाचना भी नहीं करता हूं। अब भी हम में से बहुत से लोगों की यही मनोवृत्ति है, परन्तु जब हमसे पिछली बातों को भूल जाने और उनके लिये क्षमा प्रदान करने के लिये कहा जाता है, तो मैं यह देखता हूं कि सब बातें भूलनी तो हमको पड़ती हैं और क्षमा प्रदान वे करते हैं। हमें तो एक शताब्दी के शोषण, दमन, उत्पीड़न अधिकार तथा स्वातन्त्र्य-अपहरण और अपने हितों तथा आकांक्षाओं की हानि के इतिहास को भूलना होगा, क्योंकि हमारा देश अब एक स्वतंत्र गणराज्य होने जा रहा है। हमें तो इन सब बातों के लिये क्षमा प्रदान करनी है और उन्हें बिल्कुल ही भूल जाना है और हाथ मिलाना है ऐसे लोगों से, जो कल ही तक शोषक थे और जिन्होंने कल ही तक हमको ऐसे युद्धों में घसीटा है, जिनसे हमारा कोई सम्बन्ध नहीं था, परन्तु जिनमें हमारे हजारों लोग कट गये और हमारा करोड़ों रुपया खर्च हो गया और मेरे विचार से जिनके बारे में आज भी यह सन्देह किया जा सकता है कि वे बहुत सी बातों को गुजार कर हमें आमंत्रित कर रहे हैं और हमें प्रलोभन देकर हमसे इस समझौते को स्वीकार करने के लिये आग्रह कर रहे हैं।

जब मैं सभा से यह कहता हूं कि उसे याद करना चाहिये कि इस देश में ब्रिटेन ने क्या-क्या किया, तो मुझे केवल अतीतकाल ही स्मरण नहीं हो आता। इस समय भी ब्रिटेन के कई तथा कथित उपनिवेश, जो अब स्वतंत्र राष्ट्र हैं, हमारे प्रति न केवल जातीय विभेद की नीति को प्रयोग में ला रहे हैं, किन्तु संसार को यह अच्छी प्रकार बता रहे हैं कि वे 'गोरे आस्ट्रेलिया' तथा 'गोरे अफ्रीका' को स्थापित करने की नीति का अनुसरण

करेंगे। इससे अधिक और क्या हो सकता है कि वे विवादों के समाधान के लिये किसी शान्तिपूर्ण उपाय को भी अपनाने के लिये तैयार नहीं हैं।

यदि हम इस जीर्ण ब्रिटिश राष्ट्रमण्डल की तुलना संयुक्त राष्ट्रसंगठन से करें, तो हमें यह दिखाई देता है कि वह कम से कम ऐसे देशों को तो संघ है, जिनका जनतंत्रात्मक सिद्धान्तों में विश्वास है। उसका एक निश्चित विधान है और एक महापत्र है। उसकी अपनी विधायी तथा कार्यपालिका संस्थायें हैं। किन्तु इसके विपरीत राष्ट्रमण्डल का (यद्यपि हमें खुश करने के लिये अथवा हमारी भावनाओं का ध्यान रखते हुए 'ब्रिटिश शब्द को निकाल दिया गया है) न कोई सर्वमान्य विधान है न कोई महापत्र और न कोई संगठन ही है और उसके विभिन्न सदस्यों के प्रति न्याय कराने के लिये कोई संस्था भी नहीं है। शिकायतों की रजिस्ट्री करने के लिये अथवा उनकी जांच करने के लिये अथवा किसी विवाद में राजीनामा कराने के लिये कोई संस्था नहीं है।

कम से कम हम भारतीयों के लिये ब्रिटिश राष्ट्रमण्डल में संयुक्त राष्ट्रसंगठन से बढ़कर कौन सी ऐसी बात है कि जिसके कारण हम अपनी स्वतंत्रता प्राप्ति के एक ही वर्ष उपरान्त इस राष्ट्रमण्डल के सदस्य हो जायें। मैं इसे दुहराना चाहता हूं कि इस सभा से तथा देश से राष्ट्रमण्डल का सदस्य होने के लिये आग्रह करने की कोई आवश्यकता नहीं है और न ऐसा करने में कोई बुद्धिमत्ता ही है, क्योंकि यह स्पष्ट है कि कोई परिवर्तन नहीं होने जा रहा है। यदि हमारा देश ब्रिटिश राष्ट्रमण्डल में स्वतंत्र सर्वसत्ताधारी गणराज्य की हैसियत से रहेगा, तो यह हैसियत उसकी संयुक्त राष्ट्रसंगठन में भी है ही! ब्रिटिश राष्ट्रमण्डल का ढांचा ही और उसका दरवाजा केवल भूतपूर्व ब्रिटिश राष्ट्रमण्डल अथवा साम्राज्य के सदस्यों के लिये ही खोलना इसका द्योतक है कि संसार के एक बड़े समूह अर्थात् संयुक्त राष्ट्रसंगठन के अन्दर एक छोटा समूह बनाया जा रहा है जो बहुत ही आपत्तिजनक है। ब्रिटिश राष्ट्रमण्डल से संयुक्त राष्ट्रसंगठन का विश्व में कहीं अधिक प्रसार है और संसार के कहीं अधिक राष्ट्र उसके सदस्य हैं और वह अन्याय के निराकरण में अपेक्षाकृत कहीं अधिक क्रियाशील भी है...

***मि. तजम्मुल हुसैनः** क्या मैं माननीय सदस्य महोदय से यह सूचना प्राप्त कर सकता हूं कि यह कदम उठाने में कोई नुकसान भी है?

प्रो. के.टी. शाहः यदि मेरे माननीय मित्र कुछ धैर्य रखें, तो वे मुझसे सुन सकेंगे कि इसमें नुकसान क्या हैं?

अब मैं अपने तर्क को उठाता हूं। मैं इसकी परीक्षा करने का प्रयास कर रहा हूं कि जिस समझौते को मुझसे स्वीकार करने को कहा जा रहा है, उससे कोई लाभ भी हो सकता है अथवा नहीं। अभी तक तो मैं उसमें कोई लाभ नहीं देख पाया हूं।

[प्रो. के.टी. शाह]

अभी तक मैंने इस विषय पर केवल वैधानिक दृष्टि से विचार किया है। अब मैं इस पर आर्थिक दृष्टि से विचार करने का प्रयास करूंगा। मुझे तो इस प्रश्न का आर्थिक अंग और भी अधिक अंधकारमय दिखाई देता है, क्योंकि इस प्रकार के राष्ट्रमण्डल में सम्मिलित होने से किसी प्रकार के लाभ की सम्भावना नहीं है। यदि ब्रिटेन स्वयं ही अपने स्वास्थ्य-लाभ के लिये दूसरों का मुखापेक्षी है और अमेरिका से सहायता मांग रहा है, तो यह किसी के भी समझ में आ सकता है कि वह इस स्थिति में नहीं है कि हमें अपनी प्रस्तावित विकास-योजनाओं को कार्यान्वित करने में सहायता दे सके। यदि हमें अपने विकास-कार्य को आगे बढ़ाने के लिये किसी प्रकार की सहायता की अपेक्षा है, तो मेरी यह धारणा है कि ब्रिटेन से इसकी आशा करना निरर्थक है।

माननीय प्रधानमंत्री ने अपने भाषण में यह बताया कि वे अच्छे मोलतोल करने वाले नहीं हैं। मेरे विचार से यह ठीक ही है। परन्तु मैं सभा को यह स्मरण कराना चाहता हूं कि ब्रिटेन एक कुशल मोलतोल करने वाला है और वास्तव में ब्रिटिश राजनीतिज्ञ इतने कुशल मोलतोल करने वाले हैं, जो अपनी वाक्पटुता से तथा कूटनीतिज्ञता से तो यह दर्शाते हैं कि मोलतोल करना तो उनके स्वभाव में है ही नहीं, परन्तु प्रतिक्षण वे इतनी कुशलता से मोलतोल करते हैं कि जो कोई उसका शिकार होता है, उसे दस वर्ष बाद उसका पता लगता है। इस समय इस समझौते में किसी प्रकार का मोलतोल न दिखाई देता हो और इसलिये सम्भवत: यह अच्छा न मालूम पड़े कि हम यह पूछें कि इससे क्या प्रतिलाभ होगा। ब्रिटेन की पिछले दो सौ वर्षों की परम्परा यह सिद्ध करती है कि ब्रिटिश राष्ट्र वणिकों को राष्ट्र है और इसलिये वह मोलतोल करने में सबसे कुशल है। अन्य लोग इसे भूल सकते हैं, परन्तु हमें तो हाल ही तक ब्रिटेन की मोलतोल करने की कुशलता का अनुभव होता रहा है और इसलिये मैं इसकी उपेक्षा नहीं कर सकता।

इसलिये इस समझौते के फलस्वरूप राष्ट्रमण्डल से निकट सम्पर्क तो अवश्य स्थापित होगा, परन्तु मेरे विचार से इससे देश को किसी प्रकार का आर्थिक लाभ होने की आशा नहीं है। हमें तो उस देश से सम्बन्ध स्थापित करके नुकसान ही उठाना पड़ेगा। अब मैं अपने माननीय मित्र का ध्यान, जिन्होंने मेरे भाषण में विघ्न डाला था, इस ओर दिलाना चाहता हूं कि इससे क्या नुकसान हो सकता है। मैं कह नहीं सकता कि उन्हें यह ज्ञात है या नहीं कि हमारी जनसंख्या ब्रिटेन की जनसंख्या की पांच गुनी से अधिक है और सम्भवत: वह ब्रिटेन और उपनिवेशों की जनसंख्या की सतगुनी है। इस समय गोरों की जो जनसंख्या है, उसकी मैं चर्चा कर रहा हूं। साधनों की दृष्टि से और मुख्यत: अविकसित साधनों की दृष्टि से सम्भवत: हमारा महत्त्व उनसे कहीं अधिक है। आर्थिक दृष्टि से, चाहे

हमारे सामने आज कितनी भी कठिनाइयां क्यों न हों क्योंकि ये कठिनाइयां तो संक्रान्तिकालीन कठिनाइयां हैं, हमारी स्थिति उनसे कहीं अधिक संतुलित है। ब्रिटेन की आर्थिक स्थिति तो बहुत ही असंतुलित है और उपनिवेशों की आर्थिक स्थिति भी कम से कम इस समय असंतुलित है। इन देशों को दूसरों से तमाम साधन प्राप्त करने की अधिक आवश्यकता है और ये इस स्थिति में नहीं हैं कि कुछ दे सकें और उनकी आर्थिक स्थिति इस प्रकार की है कि वे अपनी जितनी चीजें अपने काम में लाते हैं उससे अधिक बेचने के लिये बाध्य हैं अर्थात् अपनी आवश्यकताओं को पूरा करने के लिये वे जितना उत्पादन करते हैं उससे अधिक खर्च करते हैं। ऐसे लोगों को इस प्रकार के संगठन से यही आशा होती है और यही सम्भावना दिखाई देती है कि उन्हें कुछ न कुछ लाभ अवश्य होगा। किन्तु इनके निकट सम्पर्क में आने से हमें किसी प्रकार के लाभ की आशा नहीं हो सकती।

मुझे आशा है कि यदि मैं सभा को इसका स्मरण कराऊं कि पिछले पन्द्रह या बीस वर्षों में इस देश में साम्राज्यशाही की ओर से किस प्रकार पक्षपात होता रहा, तो वह मुझे क्षमा करेगी। यदि साम्राज्यशाही का यह पक्षपात अब उसी प्रकार एक नया रूप धारण करने जा रहा है, जैसे कि ब्रिटिश राष्ट्रमण्डल एक नया रूप धारण कर रहा है, तो मुझे इस सभा को इस जाल से बचने के लिये चेतावनी देनी ही चाहिये। यद्यपि यह जाल अभी हमारे सामने नहीं फैलाया गया है, परन्तु समय आने पर वह फैलाया ही जायेगा और हमें अंग्रेज व्यापारी को लाभप्रद पद प्रदान करने के लिये बाध्य होना ही पड़ेगा, भले ही हमारा पद उससे कम लाभप्रद रह जाये और हमें कुछ त्याग करना पड़े।

श्रीमान्, कुछ ही दिन हुये हमने विदेश के लोगों को भारत में पूंजी लगाने के लिये बड़ी शिष्टता दिखाकर आमन्त्रित किया और विशेषतया अंग्रेज पूंजीपतियों की बहुत खुशामद की। इस प्रकार की नीति को मैंने उस समय भी स्वीकार नहीं किया था और इस समय भी उसे स्वीकार करने में असमर्थ हूं, क्योंकि मैं नही समझता हूं कि ब्रिटिश राष्ट्रमण्डल से निकट सम्बन्ध रखकर हमें आर्थिक दृष्टि से कोई लाभ हो सकता है।

श्रीमान्, यह हो सकता है कि ब्रिटेन अभी बिल्कुल थक न गया हो। मेरा भी यह विचार है कि अभी ब्रिटेन का दम नहीं उखड़ा है, परन्तु मेरा यह विश्वास अवश्य है कि अब ब्रिटेन संसार में कारखानेदारों, खरीददारों और बैंकरों का वैसा राष्ट्र नहीं रह गया है, जैसा कि वह पिछली शताब्दी में था। ऐसे देशों को, जिनको अपने यहां पर्याप्त साधन सुलभ हैं और जिनकी जनसंख्या इतनी अधिक है कि वे अपने पैरों पर खड़े हो सकते हैं और अपने लिये वही पद प्राप्त कर सकते हैं। एक ऐसे देश के सम्पर्क से कोई लाभ होने नहीं जा रहा है, जो कानूनी तौर पर भले ही दिवालिया नहीं कहा जा सके, परन्तु जो अभी तक अपना ऋण नहीं चुका सका है और अपने ऋणकर्त्ताओं से अपना हिसाब नहीं तय कर पाया है।

[प्रो. के.टी. शाह]

इसके अतिरिक्त ब्रिटेन के अपने अर्थ-सम्बन्धी मामलों के लिये संयुक्त राज्य अमेरिका से धीरे-धीरे सम्बन्ध स्थापित करने और उस पर निर्भर रहने से इस सम्बन्ध में और भी अधिक सन्देह होता है कि हमारे देश के समान अन्य देशों को भी, जिन्होंने हाल ही में स्वतंत्रता प्राप्त की है और जो अपने आर्थिक विकास के सम्बन्ध में सचेष्ट हैं, इन देशों से इस प्रकार सम्बन्ध स्थापित करना कहां तक आवश्यक और उचित है कि उनका सारा आर्थिक ढांचा इन देशों के स्वार्थों, तरीकों, वर्ग-प्रणाली और शोषण-नीति पर निर्भर हो जाये। पहले यही होता आया है और यदि हम में इसके विरोध करने की शक्ति नहीं रही, तो यही होता रहेगा।

श्रीमान्, यह खतरा अवश्य है, किन्तु यह उन लोगों की समझ में नहीं आ सकता है, जो केवल ऊपरी बातें देखकर संतुष्ट हो जाते हैं। श्रीमान्, हमें यह सलाह दी गई है कि हम गढ़े हुये मुर्दे न उखाड़ें। हमें यह भी सलाह दी गई है कि इस समय की भी बात बहुत न सोचें, बल्कि दृष्टि में रखें भविष्य को। श्रीमान्, मैं कोई भविष्यवक्ता नहीं हूं और इसलिये कह नहीं सकता हूं कि भविष्य में क्या होगा। किन्तु वर्तमान काल की घटनाओं तथा प्रवृत्तियों को तथा युद्ध के उपरान्त चार वर्षों से जो कुछ हुआ, उसे देखकर यह स्पष्ट हो जाता है कि ब्रिटिश राष्ट्रमण्डल के इस सम्बन्ध से, जिसका अनुसमर्थन करने के लिये हमसे कहा जा रहा है, हमें न तो आर्थिक सहायता के रूप में और न औद्योगिक विकास के रूप में कोई आर्थिक लाभ होने जा रहा है। इसका परिणाम केवल यह होगा कि हमें इसका बहुत मूल्य चुकाना पड़ेगा। निःस्सन्देह यदि आप मूल्य की चिन्ता न करें तो प्रत्येक चीज लाभप्रद समझी जा सकती है। यदि आप जितना मूल्य मांगा जाये उतना चुकाने के लिये तैयार हैं, तो मुझे आगे कुछ नहीं कहना है। किन्तु यदि आप नफे-नुकसान का ठीक-ठीक हिसाब लगायें, तो मुझे विश्वास है कि ब्रिटिश राष्ट्रमण्डल के साथ वर्तमान सम्बन्धों अथवा भावी सम्बन्धों के बारे में कोई भी रोकड़िया आपको रोकड़ बाकी नहीं दिखा सकता है।

मैं कुछ ही शब्द और कहकर समाप्त करता हूं। इस सम्बन्ध में जो राजनैतिक स्थिति उत्पन्न होगी, उसका जितना महत्त्व बताया गया है उससे किसी प्रकार कम महत्त्व नहीं है। श्रीमान्, हमसे यह कहा गया है कि हम एकाकी जीवन व्यतीत नहीं कर सकते हैं। हम इस प्रकार का जीवन कभी भी व्यतीत नहीं कर सकते हैं। यह किसी की भी सम्मति नहीं है कि हम एकाकी जीवन व्यतीत करें। ऐसा करना मूर्खता होगी। कोई भी देश, चाहे वह कितना ही बड़ा क्यों न हो, वर्तमान काल में अलग रहने की नीति का अनुसरण नहीं कर सकता। परन्तु इसका अर्थ यह नहीं है कि हम केवल ब्रिटिश राष्ट्रमण्डल के साथ ही सम्बन्ध स्थापित कर सकते हैं। हम स्वेच्छा से तथा ईमानदारी से संयुक्त राष्ट्र

[प्रो. के.टी. शाह]

संगठन में सम्मिलित हुये हैं, जो कि सारे संसार का संगठन है। हमने यह प्रतिज्ञा की है कि हम उसकी सहायता करेंगे तथा उसके साथ सहयोग करेंगे। संयुक्त राष्ट्र न विभिन्न राजनैतिक समूहों के लिये जो संगठन स्थापित किया है उससे लाभ उठाने का हम प्रयास कर रहे हैं। किन्तु इसका यह अर्थ नहीं है कि हम ब्रिटिश राष्ट्रमण्डल के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध स्थापित करें क्योंकि इससे अन्य लोग हमारे आचरण पर सन्देह कर सकते हैं और हमारे शुद्ध संकल्प होने पर भी हमारे शत्रु हो सकते हैं।

श्रीमान्, हमसे कहा गया है कि हमारी शिक्षा का प्रकार ब्रिटिश प्रणाली के आधार पर निश्चित किया गया है और यह भी कि हमारी सारी शासन-व्यवस्था तथा आर्थिक व्यवस्था ब्रिटिश प्रणाली पर ही आधृत है। किन्तु क्या इस कारण हमें ऐसी बातों को भी बनाये रखना चाहिये, जो हमारे लिये हानिकर सिद्ध हो सकती है? हमें इसे एक चेतावनी समझना चाहिये और यह समझना चाहिये कि विपत्ति सन्निकट है। इसके कारण हमें और भी अधिक आतिथ्य करने तथा घनिष्ट सम्बन्ध स्थापित करने की कोई आवश्यकता नहीं है। इस प्रश्न के इस अंग पर मुझे बहुत कुछ कहना है, परन्तु मैं आपके धैर्य की सीमा का उल्लंघन नहीं करना चाहता और इन शब्दों के साथ सभा से निवेदन करता हूं कि इस प्रस्ताव को अस्वीकार कर दिया जाये।

***श्री अल्लादी कृष्णास्वामी अय्यर** (मद्रास : जनरल): अध्यक्ष महोदय, आपकी आज्ञा से मैं माननीय प्रधानमंत्री महोदय को एक ऐसे जटिल प्रश्न को हल करने के लिये बधाई देता हूं, जिनके बारे में कुछ महीने पूर्व यह समझा जाता था कि वह किसी प्रकार हल नहीं हो सकता है। जिस प्रस्ताव का अनुसमर्थन करने के लिये कहा जा रहा है, उससे हमारे उस निश्चय का किसी प्रकार निराकरण नहीं होता, जिसे हमने इस विधान-परिषद में आरम्भ में ही किया था। भारत आन्तरिक तथा वैदेशिक दोनों प्रकार के मामलों के सम्बन्ध में सर्वसत्ताधारी स्वतंत्र गणराज्य का पद ग्रहण करने जा रहा है। हमारे आन्तरिक मामलों तथा वैदेशिक मामलों में सम्राट का कोई हाथ नहीं रहेगा। देश में तथा विदेश में संघ का राष्ट्रपति भारत का प्रतिनिधि होगा। विदेश में किसी प्रकार का कार्य करने के लिये हमें ब्रिटिश सम्राट के प्रमाणपत्र अथवा उसके नाम से दिये हुये प्रमाणपत्र की कोई आवश्यकता न होगी। युद्धकाल तथा शान्तिकाल में और व्यापार-वाणिज्य के सम्बन्ध में हम अपने स्वामी स्वयं होंगे। हम किसी प्रकार के आर्थिक जाल में जकड़े हुये नहीं रहेंगे। जहां तक उपनिवेशों का सम्बन्ध है, भारत में और उनमें बहुत अन्तर है। भारत को एक ऐसी वैदेशिक नीति का अनुसरण करने का अधिकार होगा, जिससे भारत का यथेष्ट रूप से हितसाधन हो सकेगा। इस समझौते को स्वीकार करने के विरोध में केवल यही बात कही गई है कि घोषणा में वेस्टमिंस्टर के कानून के प्रथम भाग को सम्मिलित करने के

[श्री अल्लादी कृष्णास्वामी अय्यर]

लिये कोई कारण नहीं है। अर्थात् इसे सम्मिलित करने के लिये कोई कारण नहीं है कि सम्राट ब्रिटिश राष्ट्रमण्डल के सदस्यों के स्वतंत्र सम्मेलन का प्रतीक होगा। घोषणा के दूसरे भाग का, जो वेस्टमिंस्टर के कानून की प्रस्तावना का अंग है, अर्थात् जिसका सम्बन्ध सम्राट के प्रति निष्ठा से है, कोई उल्लेख नहीं किया गया है। इसलिये सम्राट से केवल इतना सम्बन्ध रहेगा कि वह राष्ट्रमण्डल के सदस्यों के स्वतंत्र सम्मिलन का प्रतीक रहेगा। यदि एक प्रतीक रहा तो ढांचे में संघ के राष्ट्रपति को स्थान देना बहुत कठिन हो जायेगा। यह कोई सुसंगत बात न होगी कि इंग्लैंड और उपनिवेशों के प्रधानमंत्री और भारत के राष्ट्रपति को बारी-बारी से सम्मेलन का प्रधान बनाया जाये। चूंकि सम्राट अब भी अन्य उपनिवेशों का प्रमुख है और चूंकि हम स्वतंत्र रूप से एक सम्मेलन में सम्मिलित होने जा रहे हैं, इसलिये सम्राट प्रतीक रूप में बना रहेगा। राष्ट्रमण्डल के विभिन्न देशों के सम्बन्ध में सम्राट के कोई कार्य अथवा कर्त्तव्य अथवा अधिकार न होंगे। सम्राट की यही स्थिति होगी।

इसलिये अब हमें इस प्रश्न पर विचार करना है कि जो योजना स्वीकार की गई है, वह बहुत आपत्तिजनक तो नहीं है। इस सम्बन्ध में मैं सभा का ध्यान इस ओर दिलाना चाहता हूं कि इस सम्मेलन में और अटलांटिक संधि द्वारा बनाये हुये गुट और संयुक्त राष्ट्र संगठन में किसी प्रकार की समानता नहीं है। कम से कम संयुक्त राष्ट्र के सम्बन्ध में, यद्यपि संयुक्त राष्ट्र के विभिन्न देशों की सर्वसत्ता उसकी घोषणा के अनुसार निश्चित है, किन्तु उसके अनेक भागों को देखने से आपको पता लगेगा कि कुछ ऐसे प्रावधान हैं, जिनसे संयुक्त राष्ट्र के सदस्यों की सर्वसत्ता कुछ कम हो जाती है।

इसी प्रकार अटलांटिक संधि के अधीन बने हुये गुट के समान बने हुये किसी गुट में सम्मिलित होने का कोई प्रश्न नहीं उठता, क्योंकि रक्षा के सम्बन्ध में अथवा युद्ध के सम्बन्ध में अथवा किसी अन्य विषय के सम्बन्ध में किसी प्रकार का वचन नहीं दिया गया है। इसलिये हमारे प्रधानमंत्री ने जो कार्य किया है, उससे हमें किसी प्रकार के भी दायित्व का भार नहीं उठाना पड़ता। वैदेशिक मामलों अथवा आन्तरिक मामलों के सम्बन्ध में भारत के गणराज्य के पद पर कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा और राष्ट्रपति की प्रतिष्ठा पर भी कोई प्रभाव न पड़ेगा। वास्तव में घोषणा में इन बातों का कोई उल्लेख नहीं है। उदाहरणार्थ, यदि इंग्लैंड का सम्राट भारत में आये तो उसे हमारे राष्ट्रपति की तुलना में अधिक मान प्राप्त न होगा। हमारा राष्ट्रपति भारत का प्रतिनिधि होगा और इंग्लैंड के सम्राट को उससे अग्रिम पद प्राप्त न होगा, भले ही वह भारत के राज्य-क्षेत्र में अथवा किसी

अन्य क्षेत्र में राष्ट्रमण्डल से हमारे सम्बन्ध का प्रतीक हो। अन्य क्षेत्रों में, जिनमें उपनिवेश और इंग्लैंड भी सम्मिलित हैं, राष्ट्रपति को स्वतंत्र सर्वसत्ताधारी का पद प्राप्त होगा।

इसलिये यह कहा जाता है और कुछ लोगों ने यह प्रश्न उठाया भी है कि ''हम अलग ही क्यों न रहें? हम वही स्थिति क्यों न स्वीकार करें जो आयरलैंड ने स्वीकार की है?'' इस सम्बन्ध में हमें यह स्मरण रखना चाहिये कि आयरलैंड की ऐसी स्थिति है कि वहां के देशवासियों को सभी जगह नागरिकता का लाभ प्राप्त हो सकता है, क्योंकि उनके सम्बन्धी कनाडा, आस्ट्रेलिया और अमेरिका में बसे हुये हैं और वे उपनिवेशों तथा अमेरिका के सम्बन्धों को सुदृढ़ बना सकते हैं। यह आप आसानी से समझ सकते हैं कि वे सभी जगह और इंग्लैंड में भी नागरिकता के अधिकारों को त्याग देने के लिये क्यों तैयार हैं। इसलिये आयरलैंड की स्थिति को ठीक-ठीक समझना आवश्यक है। एक तो आयरलैंड बहुत छोटा देश है और इंग्लैंड के बहुत निकट है और दूसरे आयरिश लोग सभी उपनिवेशों में बसे हुये हैं। इसलिये सम्बन्ध स्थापित करने से जो लाभ होता है, वह उसे स्वत: प्राप्त है और राष्ट्रमण्डल में बिना सम्मिलित हुये भी दोनों गोलार्धों से वह लाभ उठा सकता है। उसमें सम्मिलित न होने से आयरिश लोगों की जो भावनायें हैं, वे भी बहुत कुछ बनी रहती हैं। इन बातों से आयरलैंड की स्थिति स्पष्ट हो जाती है। हमें अपनी स्थिति पर भी विचार करना है और वह इस दृष्टि से नहीं कि आयरलैंड ने क्या किया है और क्या करने जा रहा है, बल्कि इस दृष्टि से कि हमारे देश का सबसे अधिक हितसाधन किस प्रकार होगा। आपको कई बातों पर विचार करना होगा अर्थात् इस पर कि वर्तमान सम्बन्धों को ध्यान में रखते हुये हमारी सेना का संगठन किस प्रकार का हो, धन को अपने देश में लाने के लिये हम किन शर्तों को पूरा करें आदि, भले ही ये बातें प्रस्ताव को समझने में सहायक न हों। इन उद्देश्यों की पूर्ति के लिये कुछ सम्बन्ध स्थापित करने से अथवा पुराने सम्बन्धों को सक्रिय बनाने से देश को लाभ होगा।

इसमें मुझे कुछ भी सन्देह नहीं है कि विधान में भारत की जो वैधानिक स्थिति है और जो स्वतंत्रता और प्रतिष्ठा उसे प्राप्त है, उसे बनाये रखते हुये माननीय प्रधानमंत्री ने जो इस समझौते को करते हुये इन बातों को भी ध्यान में रखा होगा।

एक और बात है जिसकी ओर आपको ध्यान देना चाहिये। वह यह है कि विधान में अब बिना किसी विराम को रखे हुये अथवा विधान के पहले बिना कुछ शब्द जोड़े हुये अथवा बिना उसके किसी भाग में सम्राट का उल्लेख किये हुये वह प्रयोग में आयेगा। प्रस्तावना उसी प्रकार रहेगी। विधान में विभिन्न भागों को प्रस्ताव के अनुरूप बनाने के लिये आवश्यक परिवर्तन किये जा सकते हैं। किन्तु इस वैधानिक ढांचे में सम्राट का कोई

[श्री अल्लादी कृष्णास्वामी अय्यर]

स्थान न रहेगा। यह सम्मेलन बहुत ही असम्बद्ध है, किन्तु इससे कुछ लाभ होने की आशा है। वर्तमान काल में कोई भी व्यक्ति और कोई भी देश सुन्दर एकाकी जीवन व्यतीत नहीं कर सकता। किसी राष्ट्र का दास होना और उसकी आर्थिक नीति का शिकार होना दूसरी बात है और अपने व्यक्तित्व को बनाये रखना दूसरी बात है। यह कहा जाता है कि यदि आप अपने सभी वैधानिक सम्बन्धों का विच्छेद कर दें, तो स्वाधीनता प्राप्त हो जायेगी। यह गलत है। सब कुछ इस पर निर्भर रहेगा कि आप कितनी शक्ति प्राप्त कर लेते हैं। चीन को देखिये। बहुत काल तक वह सिद्धान्ततः स्वाधीन था, किन्तु उसे अन्य देशों का मुंह ताकते रहना पड़ता था। इसी प्रकार सिद्धान्ततः हमारा देश स्वाधीन हो सकता है और उसका ब्रिटेन और ब्रिटिश सम्राट से किसी प्रकार का सम्बन्ध नहीं हो सकता है, किन्तु जब तक आप अपनी शक्ति का विकास न करे लेंगे, आप पर अन्य राष्ट्रों का नियंत्रण रहेगा। इसलिये इस प्रश्न को इसी दृष्टि से हल करना चाहिये कि क्या किसी बात से हमारी शक्ति के विकास में बाधा तो नहीं पड़ती और क्या हमें इसकी स्वतंत्रता है कि हम किसी समय भी सम्बन्ध-विच्छेद कर लें। उदाहरणार्थ, यदि ब्रिटेन का व्यवहार ठीक नहीं रहा तो आगे की सरकार को और प्रौढ़ मताधिकार के आधार पर निर्वाचित आगे की संसद को उससे सम्बन्ध विच्छेद करने की स्वतंत्रता रहेगी। इसलिये यह प्रश्न समयोचित कार्य करने का प्रश्न है। एक ओर यह कहा जाता है कि इस घोषणा में कुछ भी सार नहीं है और दूसरी ओर यह कहा जाता है कि यह बहुत सारपूर्ण है। जब प्रधानमंत्री महोदय खुले तौर पर कोई घोषणा करते हैं तो आपको कोई अधिकार नहीं है कि जो बातें नहीं कही गई हैं, उन्हें आप उस घोषणा के सम्बन्ध में कहें। आपको उनकी बातों पर विश्वास करना होगा। हम अपने प्रधानमंत्री महोदय को इतनी अच्छी तरह जानते हैं और इसलिये हमें यह न सोचना चाहिये कि उन्होंने किसी के साथ कोई समझौता कर लिया है। जो कोई भी समझौता किया गया है, वह घोषणा में बता दिया गया है। क्या आप घोषणा को मानने के लिये तैयार हैं या नहीं?

एक दूसरी बात भी कही गई है और वह यह है कि इस प्रस्ताव का पहले अनुसमर्थन हो जाना चाहिये था। मैंने यह कभी नहीं सुना है कि अन्य राष्ट्रों से संधि करने के पूर्व उसके पूरे ब्यौरे पर अन्य लोगों से विचार-विमर्श हो जाना चाहिये। सारी योजना कई अवसरों पर इस सभा के सामने रखी गई थी। कांग्रेस इस सम्मेलन अथवा संघ में सन्निहित सिद्धान्त का समर्थन करने के लिये तैयार हो गई थी। ऐसी स्थिति में यह कहना कि इस समझौते का प्रत्येक विराम और प्रत्येक वाक्य इस सभा के सामने रखा जाना चाहिये था, कोई अर्थ नहीं रखता। प्रधानमंत्री इस सभा के सम्पूर्ण सन्देश को लेकर गये और वापस आने पर आपसे उसका अनुसमर्थन करने को कह रहे हैं। इस कार्यप्रणाली में क्या दोष है? क्या वह संसार के किसी सभ्य देश को मान्य अन्तर्राष्ट्रीय कार्यप्रणाली के विरुद्ध है?

यह बात मेरी समझ में नहीं आती है। मैंने यह कभी नहीं सुना है कि किसी समझौते के पूरे ब्यौरे पर किसी संसद अथवा विधान-परिषद में विचार-विमर्श हो जाना चाहिये और उसके प्रत्येक खण्ड पर विचार-विमर्श करके स्वीकार कर लेना चाहिये और तब उसे अन्य पक्षों के सम्मुख स्वीकार करने अथवा अस्वीकार करने के लिये रखा जाना चाहिये। आपको केवल इस पर विचार करना है कि प्रधानमंत्री को कांग्रेस ने अथवा विधान-परिषद ने जो आदेश दिये थे, उनकी उन्होंने किसी प्रकार उपेक्षा तो नहीं की है।

इस सम्बन्ध में मुझे कुछ भी सन्देह नहीं है कि जहां तक भारत का सम्बन्ध है, उसकी ओर से कोई वचन नहीं दिया गया है। उसे इसका अधिकार है कि वह अपनी इच्छा के अनुसार अपनी वैदेशिक नीति, अपनी आन्तरिक नीति और अपनी औद्योगिक नीति का अनुसरण करे। उपनिवेश होते हुये भी भारत स्वतंत्रता से अपनी ही नीति का अनुसरण कर रहा है और अन्य उपनिवेशों से परामर्श नहीं ले रहा है। उसने ऐसे कार्यों के सम्बन्ध में भी, जिनका ब्रिटेन विरोध करता रहा है, उससे परामर्श नहीं लिया। कठिन स्थिति उत्पन्न होने पर जब ब्रिटेन ने देखा कि किसी पक्ष का साथ देना आपत्तिजनक होगा, तो वह तटस्थ रहा। उसकी तटस्थता से भी हमें लाभ ही होता है। उदाहरणार्थ, यदि कभी राष्ट्रमण्डल के किसी सदस्य और हमारे बीच कलह होगा, तो उसकी तटस्थता लाभप्रद ही सिद्ध होगी। बात यह है कि हम राष्ट्रों के किसी गुट को वचन नहीं दे रहे हैं। भारत ही एक ऐसा देश है, जो किसी प्रकार वचनबद्ध नहीं है। इस स्थिति में जब तक कि आप आजकल के संसार के जटिल प्रश्नों की उपेक्षा करके एकाकी जीवन व्यतीत न करना चाहें, यह बहुत लाभप्रद सिद्ध होगा कि आप अपने मित्रों को बिना किसी प्रकार के वचन दिये हुये उनसे वार्त्ता कर सकें। जब किसी प्रकार के वचन दिये ही नहीं गये हैं, तो इस निर्णय की आलोचना केवल कानूनी आलोचना होगी, जब तक कि आलोचक यह न चाहें कि वचन दिये जायें। क्या प्रोफेसर शाह यह चाहते है कि वचन दिये जायें? क्या वे लोग, जिन्होंने इस समझौते के सम्बन्ध में चेतावनी दी है, यह चाहते हैं कि वचन दिये जायें? यदि आपकी यह इच्छा है तो दोनों पक्ष वचनबद्ध होंगे। एक ही पक्ष वचन नहीं दे सकता है, इसलिये यह आलोचना तर्कयुक्त नहीं है। एक ओर आप किसी गुट में सम्मिलित नहीं होना चाहते हैं और दूसरी ओर किसी प्रकार के वचन भी नहीं देना चाहते हैं। यदि आप लोगों के किसी समूह से किसी प्रकार का वास्तविक लाभ उठाना चाहते हैं, तो आपको उनकी शर्त्तें मानने के लिये तैयार होना चाहिये। आर्थिक क्षेत्र के सम्बन्ध में भी यह सोचना गलत है कि आप अन्य राष्ट्रों से अलग रहकर ही स्वतंत्र हो सकते हैं। अमेरिका का उदाहरण लीजिये। अमेरिका संसार के अन्य राष्ट्रों पर प्रभुत्व प्राप्त किये हुये है। क्या यह

[श्री अल्लादी कृष्णास्वामी अय्यर]

इस कारण है कि उसने इन राष्ट्रों के साथ सन्धियां की हैं? उसके पास धन है, उसके पास सम्पत्ति है और उसके पास विपुल साधन हैं और इसीलिये वह सारे संसार पर प्रभुत्व प्राप्त किये हुये हैं। यूरोप के स्वतंत्र राष्ट्रों को देखिये। क्या उनके स्वतंत्र न होने के कारण उन पर प्रभुत्व है? वे हर प्रकार स्वतंत्र गणराज्य है, पर फिर भी उन पर अन्य देशों का प्रभुत्व है। भारत जैसे उन्नतिशील देश के बिना किसी प्रकार के वचन दिये हुये राष्ट्रमण्डल में रहना विश्व में शान्ति तथा सद्भावना की स्थापना में सहायक होगा। मेरे विचार से हमारे प्रधानमंत्री से विश्व-शान्ति का बड़ा पोषक हमें मिल नहीं सकता। मुझे इस सम्बन्ध में कुछ भी सन्देह नहीं है कि यदि वे यह देखेंगे कि इस स्वतंत्र सम्मेलन की आड़ में, जिसका प्रतीक सम्राट है, कोई जाल बिछा हुआ है, तो वे सबसे पहले इस सम्मेलन को भंग कर देने के लिये आपको सलाह देंगे। आपको किसी व्यक्ति से मिलने से इस कारण भय न करना चाहिये कि वह आपको निगल जायेगा। इसका अर्थ यह है कि आप डरपोक हैं और आप में आत्मविश्वास नहीं है। यदि आपमें आत्मविश्वास है तो आप इस सम्मेलन में अपने व्यक्तित्व का प्रभाव डाल सकेंगे। इस स्थिति में, मैंने जो तर्क उपस्थित किये हैं उनको ध्यान में रखते हुये, हमें अपने प्रधानमंत्री के किये हुये समझौते का उत्साह से तथा एकमत से समर्थन करना चाहिये। यद्यपि वे कद में छोटे हैं, किन्तु इस सम्मेलन के फलस्वरूप राष्ट्रमंडल के अन्य मंत्रियों की तुलना में उन्होंने अपने को ऊंचा उठा लिया है। जिन उद्देश्यों को लेकर हमने संघर्ष किया था, उन्हें उन्होंने प्राप्त किया है और साथ ही राष्ट्रमंडल से हमारे सम्बन्ध को चिरस्थायी बनाया है।

***मि. मोहम्मद इस्माइल साहब** (मद्रास : मुस्लिम): अध्यक्ष महोदय, माननीय प्रधानमंत्री महोदय ने सभा के सम्मुख जो प्रस्ताव प्रस्तुत किया है, उसका हृदय से समर्थन करने के लिये मैं उपस्थित हुआ हूं। पहले मैं उन्हें अन्तर्राष्ट्रीय जगत में अपनी तथा अपने देश की प्रतिष्ठा बढ़ाने के लिये बधाई देना चाहता हूं। श्रीमान्, पंडित कुंजरू, श्री के.एम मुन्शी और श्री अल्लादी कृष्णास्वामी अय्यर के तथा उनके समान अन्य विद्वान सदस्यों के इस प्रस्ताव पर बोलने के बाद मेरे लिये अब कुछ अधिक कहने को नहीं रह गया है। मैं केवल यह प्रदर्शित करने के लिये बोलना चाहता हूं कि हमारे प्रधानमंत्री ने जिस नीति का प्रतिपादन किया है, उसका समर्थन केवल एक या दो समूह नहीं कर रहे हैं, बल्कि बहुत से समूह कर रहे हैं। देश के अधिकांश लोग उनके निर्णय का समर्थन करते हैं। केवल इसी उद्देश्य से मैं इस प्रस्ताव का समर्थन करने के लिये उपस्थित हुआ हूं। पहली बात तो यह है कि जब हम इस प्रकार के महत्वपूर्ण विषयों के सम्बन्ध में बोलते हैं तो हमें हमेशा पिछली बातों को ही ध्यान में न रखना चाहिये। हमें भूतकाल को भूल जाना है और भूतकाल में जो कुछ हुआ उसे ही हमें दुहराते नहीं रहना चाहिये। हमें भूतकाल

के ही आधार पर अपनी धारणा नहीं बनानी चाहिये। पहले हम पराधीन थे और स्वतंत्रता के लिये संघर्ष करते थे। इस समय हमारे सामने जो प्रस्ताव रखे जा रहे हैं उन्हें हम उस समय सन्देह की दृष्टि से देखते और उनके विरोध में संघर्ष करते। अब स्थिति बिल्कुल बदल गई है। अब हमारा राष्ट्र स्वतंत्र है। हमें अपनी कार्यप्रणाली निश्चित करने की स्वतंत्रता है। इसलिये जब अब स्थिति बिल्कुल भिन्न है, मेरी समझ में नहीं आता कि एक स्वतंत्र राष्ट्र के प्रतिनिधि के नाते हमारे माननीय प्रधानमंत्री ने जो कार्य किया है, उसकी इस प्रकार आलोचना करने में हम इतना समय क्यों नष्ट करें। श्रीमान्, आज हमारी स्थिति कैसी है? हमारा देश राष्ट्रमण्डल का एक उपनिवेश है और विधान अभी प्रयोग में न आने के कारण उसने सर्वसत्ताधारी स्वतंत्र गणराज्य का पद प्राप्त नहीं किया है। श्रीमान्, इस स्थिति में हमारे क्या अधिकार हैं? हम जो निर्णय चाहें कर सकते हैं। हम प्रत्येक कार्य करने के लिये स्वतंत्र है। यही समझकर हमारे कुछ मित्र यह सलाह दे रहे हैं कि सभा के सामने जो प्रस्ताव रखा गया है, उसे स्वीकार न किया जाये। इन मित्रों का यह विचार है और यह ठीक ही विचार है कि सम्राट के अधीन रहते हुये और सम्राट को उस राष्ट्रमण्डल का प्रमुख मानते हुये भी जिसके हम भी सदस्य है, हमें अपनी इच्छा के अनुसार कार्य करने की स्वतंत्रता प्राप्त है। इसलिये नये विधान के अनुसार अपने देश को गणराज्य घोषित करने पर भी उसी स्थिति को बनाये रखने में उन्हें क्या आपत्ति हो सकती है? इसके अतिरिक्त, श्रीमान्, उस प्रस्ताव अथवा घोषणा को ही लीजिये, जो लन्दन में राष्ट्रमण्डल सम्मेलन की समाप्ति पर प्रकाशित की गई थी। यह घोषणा कोई पेचीदी घोषणा नहीं है। प्रधानमंत्री महोदय ने हमें यह आश्वासन दिया है कि इस घोषणा के सम्बन्ध में कोई बात छिपाकर नहीं रखी गई है और राष्ट्रमण्डल के अन्य उपनिवेशों के अधिकारियों अथवा प्रधानमंत्रियों के साथ कोई गुप्त सन्धि अथवा गुप्त समझौता नहीं किया गया है। इसलिये यह कोई पेचीदी घोषणा नहीं है और मेरी समझ में नहीं आता कि इस घोषणा में किस बात का हम विरोध कर रहे हैं। इसमें केवल वर्तमान स्थिति को बनाये रखने का प्रस्ताव किया गया है, यद्यपि यह भी कहा गया है कि निकट भविष्य में भारत गणराज्य हो जायेगा। इस समय हमारे जो अधिकार हैं और हमारी जो प्रतिष्ठा है, वह किसी प्रकार कम न होगी। घोषणा में इसी का आश्वासन दिया गया है। इसके अतिरिक्त जब हमने सम्राट को सम्मेलन का प्रतीक न कि राष्ट्रमण्डल का प्रमुख माना है, तो हम जो कुछ भी करना चाहें कर सकते हैं। उद्देश्य यह नहीं है कि हमारे आन्तरिक मामलों पर अथवा वैदेशिक मामलों पर इस घोषणा का प्रभाव पड़े।

सभा के सम्मुख जो संशोधन रखे गये हैं वे इस प्रकार हैं:

एक इस प्रकार है कि विधान के स्वीकार होने तक इस प्रस्ताव पर विचार-विमर्श

[मि. मोहम्मद इस्माइल साहब]

स्थगित रखा जाये। क्यों स्थगित रखा जाये? यदि यह संशोधन स्वीकार कर लिया गया तो क्या स्थिति होगी? स्थिति यह होगी कि हम राष्ट्रमण्डल के सदस्य बने रहेंगे। इस संशोधन का यह भी अर्थ है कि हमारे कार्य करने की स्वतंत्रता पर कोई प्रभाव नहीं पड़ रहा है। यदि यह ठीक है, तो मेरी समझ में नहीं आता कि प्रस्ताव के स्वीकार करने पर उस पर किस प्रकार प्रभाव पड़ेगा। दूसरा संशोधन इस प्रकार है कि जब तक अफ्रीका और आस्ट्रेलिया भारतीयों को राष्ट्रमण्डल के अन्य नागरिकों के समान मानने के लिये तैयार नहीं होते, तो हमें इस प्रस्ताव का अनुसमर्थन नहीं करना चाहिये। किन्तु यदि हम इस प्रस्ताव को स्वीकार कर लेते हैं और राष्ट्रमण्डल के सदस्य बने रहते हैं, तो क्या हम उन लोगों से वार्त्ता करने के लिये और अपने उद्देश्य की प्राप्ति के लिये पहले से अच्छी स्थिति में नहीं होंगे? हमारे प्रधानमंत्री के अन्य मंत्रियों के साथ किये हुये प्रबंध के अधीन राष्ट्रमण्डल के सदस्य रहते हुये भी इन प्रश्नों को हल करने के लिये अपनी इच्छा के अनुसार कार्य करने में कोई बात बाधक नहीं होगी।

श्रीमान्, मैं इस विषय पर अधिक न बोलकर सभा से केवल यह अनुरोध करना चाहता हूं कि हमारा देश इस समय अथवा आगे चलकर सबसे अलग होकर नहीं रह सकता है। यदि हमें संसार के अन्य देशों से सम्बन्ध स्थापित करना ही है, अथवा पुराने सम्बन्ध को बनाये रखना है तो हमारे सामने जो व्यवस्था प्रस्तुत है, उससे अच्छी व्यवस्था हो ही नहीं सकती। इस व्यवस्था के अधीन किसी प्रकार के वचन नहीं दिये गये हैं यदि हमारे मित्र यह चाहते हैं कि अन्य देशों के साथ सन्धि की जाये, तो प्रतिबंध और आयंत्रण हमें तथा सन्धि पर हस्ताक्षर करने वाले देशों को मानने होंगे। किन्तु इस व्यवस्था के अधीन कोई भी वचनबद्ध नहीं है। हम उतने ही स्वतंत्र हैं जितना आकाश का पक्षी। सन्धि को ही लीजिये। उसकी कम से कम कोई अवधि होगी। इस व्यवस्था की कोई अवधि नहीं है। लन्दन की घोषणा के अधीन अथवा सभा के सम्मुख प्रस्तुत प्रस्ताव के अधीन हमें इसकी स्वतंत्रता है कि हम जब भी चाहें, अपनी स्थिति में परिवर्तन कर सकते हैं। इसलिये वर्तमान परिस्थिति में यह सबसे अच्छी व्यवस्था है और इससे हमें हर प्रकार लाभ होगा। इससे हमें अन्य राष्ट्रों के साथ लाभप्रद स्थिति प्राप्त हो सकेगी और साथ ही पूर्ण कार्य-स्वातंत्र्य भी प्राप्त होगा। इस कारण, अध्यक्ष महोदय, मैं इस प्रस्ताव का हृदय से समर्थन करता हूं।

***श्री खण्डूभाई के. देसाई** (बम्बई : जनरल): अध्यक्ष महोदय, माननीय प्रधानमंत्री द्वारा उपस्थित प्रस्ताव का समर्थन करते हुये मुझे तनिक भी संकोच का अनुभव नहीं होता। मैं किसी राजनीतिज्ञ अथवा किसी वकील अथवा अन्तर्राष्ट्रीय प्रश्नों के किसी विद्यार्थी के नाते इस प्रस्ताव का समर्थन नहीं कर रहा हूं। मैं इस प्रश्न पर विचार करने के उपरान्त

इस प्रस्ताव का समर्थन कर रहा हूं कि इस समझौते का इस देश के जनसाधारण पर क्या प्रभाव पड़ा है। इसमें कोई सन्देह नहीं है कि हमारे प्रधानमंत्री ने इस प्रश्न को जिस प्रकार हल किया है, उससे संसार के अन्य राष्ट्रों की दृष्टि में भारत की प्रतिष्ठा बढ़ गई है। इस प्रस्ताव का विरोध मेरे विचार से मुख्यत: भय और आत्मलाघव की भावना पर आधृत है। विरोध करने वाले मित्रों से मैं यह कहना चाहता हूं कि वे हमारे देशवासियों को जैसा समझते हैं, उससे वे कहीं अधिक स्फूर्तिवान, प्रसन्नचित्त और साहसी हैं और पारस्परिक हितसाधन के लिये वे किसी राष्ट्र से आदान-प्रदान करने में भयभीत नहीं होते हैं। कुछ मित्रों ने जिस प्रकार इस प्रस्ताव का विरोध किया, उससे आत्मविश्वास के अभाव का ही परिचय मिलता है। कुछ वक्ता महोदयों ने ठीक ही कहा है कि हमें भूतकाल की ही बातों को नहीं सोचते रहना चाहिये। हमें वर्तमान काल की स्थिति के अनुसार आचरण करना चाहिये तथा भविष्य को भी अवश्य दृष्टि में रखना चाहिये। यह समझौता वास्तव में राष्ट्रमण्डल का रूप ही बदल देने में बहुत सहायक हुआ है। अभी तक ब्रिटिश राष्ट्रमण्डल कहे जाने वाले सम्मेलन की रूपरेखा ही हमारे प्रधानमंत्री ने बदल डाली है। इस प्रकार उन्होंने अब तक ब्रिटिश राष्ट्रमण्डल कहे जाने वाले सम्मेलन के अन्य राष्ट्रों की भी वास्तव में बहुत सहायता की है।

इस देश के जनसाधारण अपने स्वतंत्र सर्वसत्ताधारी राष्ट्र की प्रतिष्ठा को केवल इस कसौटी पर कसते हैं कि उससे विश्व-शान्ति की कितनी अभिवृद्धि होगी। यह कहा गया है कि इस सम्मेलन के सम्बन्ध में वचन दिये गये हैं। प्रधानमंत्री महोदय ने स्पष्ट शब्दों में बता दिया है कि किसी प्रकार के वचन नहीं दिये गये हैं। केवल एक वचन दिया गया है और वह है विश्व-शान्ति की अभिवृद्धि का। मेरे विचार से अन्तर्राष्ट्रीय जगत में एक नये राष्ट्र की ओर से पहला ही कदम उठाकर उन्होंने एक महान् नेतृत्व का बीड़ा उठाया है, जिसका हम स्वागत करते हैं। हमारे सामने यह प्रश्न है कि एक स्वतंत्र देश के निवासी होने के नाते क्या हमें 'मूंदहु आंख कितहु कोई नाहीं' की नीति ग्रहण करनी चाहिये? यदि भय, संकट और कठिनाइयां उपस्थित हैं तो उनसे जूझ कर ही उन्हें हल किया जा सकता है। आप आंखें मूंद कर यह नहीं कह सकते हैं कि संकट उपस्थित है ही नहीं। विश्व-शान्ति संकट में पड़ी हुई है और हमारे राष्ट्र का कर्त्तव्य है कि उसे संकटमुक्त करने में अपना योग दें। उन मित्रों से, जो चाहते हैं कि यह प्रस्ताव स्वीकार न हो, मैं यह कहना चाहता हूं कि वे विश्व-शान्ति की अभिवृद्धि के हेतु किये जाने वाले प्रयत्नों से परांगमुख हो रहे हैं। इस समझौते से अवश्य ही एक ऐसी गोष्ठी का निर्माण होता है, जिसमें हमारे प्रतिनिधि प्रवेश कर सकते हैं और हमारी विचारधारा अन्य लोगों के सामने रख के तथा उनसे विचार-विमर्श करके विश्व-शान्ति की अभिवृद्धि में अपना योग दे सकते हैं। इसमें कोई सन्देह नहीं कि अंग्रेजों से हम अब भी पहले की तरह

[श्री खण्डूभाई के. देसाई]

घृणा करते हैं और उनसे भयभीत हैं। किन्तु अब हमें इस मनोदशा को त्याग देना चाहिये। यह भी कहा गया है कि अंग्रेज मोलतोल करने में बहुत निपुण हैं और वे हमें ठग लेंगे। इस धारणा का आधार भी हमारी पुरानी मनोवृत्ति ही है। क्या भय, सन्देह और अविश्वास के आधार पर विश्व-शान्ति का पोषण अथवा अभिवृद्धि हो सकती है? यदि हमारे राष्ट्र को विश्व-शान्ति की स्थापना के लिये प्रयत्न करने हैं, क्योंकि मेरे विचार से उसने एक निश्चित उद्देश्य की पूर्ति करनी ही है, तो संसार में हमें कुछ ऐसे मित्रों की आवश्यकता होगी जो हमारे विचारों को ग्रहण कर सकते हैं। प्रोफेसर शाह ने कहा है कि वे सन्देह, अविश्वास आदि से पीड़ित हैं। आप कब तक इस अविश्वास, सन्देह और भय से पीड़ित रहेंगे।? आपको संसार में जीवित रहना है। चाहे आप इसे पसन्द करें या न करें, किन्तु संसार की राजनीति का और संसार के तमाम मामलों का आप पर प्रभाव पड़ेगा ही। आपको इसे ध्यान में रखना चाहिये कि आगे चलकर कभी यह न कहा जाये कि जब आपको संसार के राजनीतिज्ञों से वार्त्ता करने का अवसर मिला था, आप अपने कर्त्तव्य का पालन न कर सके। हमारे प्रधानमंत्री महोदय ने जो कुछ कहा है, उसके लिये अपनी कृतज्ञता प्रकट करने के स्थान में कुछ वक्ताओं ने अस्पष्ट शब्दों में इस समझौते पर आघात किया है। इनमें से कुछ मित्र अभी पुरानी ही बोली बोलते हैं और यह समझते हैं कि वे बामपक्षी अथवा उग्र परिवर्तनवादी हैं। मेरे विचार से न वे बामपक्षी हैं और न उग्र परिवर्तनवादी। वे रूढ़िवादी तथा प्रतिक्रियावादी हैं और एक ऐसे राज्य में रहना चाहते हैं जो गतिशून्य हो। हमारे प्रधानमंत्री महोदय ने संसार के प्रश्नों के सम्बन्ध में अपनी प्रगतिशील विचारधारा से ही प्रेरित होकर राष्ट्रमण्डल में प्रयत्न किये।

श्रीमान्, कुछ ही दिन पूर्व, एक सप्ताह पूर्व, इस देश के श्रमिकों के प्रतिनिधियों की सभा का इन्दौर में वार्षिक अधिवेशन हुआ और उसमें इस समझौते पर विचार-विमर्श हुआ। मुझे यह देखकर आश्चर्य हुआ कि इस समझौते का एकमत से समर्थन किया गया और वह केवल इस आधार पर कि इससे बिना भारत के पूर्णतः स्वतंत्र सर्वसत्ताधारी गणराज्य के पद के मान को किसी प्रकार कम किये हुये विश्व-शान्ति का उत्तरोत्तर हित-साधन होता है। जहां तक इस देश के तथा अन्य देशों के जनसाधारण का सम्बन्ध है, वे केवल विश्व-शान्ति में दिलचस्पी रखते हैं, ताकि के उन्नति कर सकें और सुख-शान्ति से अपना जीवन व्यतीत कर सकें।

यह कहा गया है इस सभा को इस प्रश्न पर विचार करने का अधिकार प्राप्त नहीं है। एक संशोधन इस प्रकार है कि हमें इस समझौते का अनुसमर्थन उस समय तक न करना चाहिये, जब तक कि नये विधान के अनुसार निर्वाचन न हो जाये और उसके आधार पर एक नये विधान-मण्डल का निर्माण न हो जाये। मेरे विचार से इस तर्क में कुछ

भी बल नहीं है। यह सभा विधान को स्वीकार करने के लिये सक्षम है और उसे स्वीकार कर ही लेगी तथा देश के भविष्य के सम्बन्ध में निर्णय कर लेगी। उसे यह सब अधिकार प्राप्त हैं। किन्तु इन लोगों के मतानुसार उसे इस छोटे से समझौते का अनुसमर्थन करने का अधिकार प्राप्त नहीं है। मेरी समझ से यह गलत विचार है और यह तर्कसंगत भी नहीं है। अच्छा तो यही होगा कि हमारे प्रधानमंत्री महोदय ने हमारे सम्मुख जो प्रस्ताव रखा है, उसे हम निस्संकोच स्वीकार कर लें।

श्रीमान्, इस समझौते को करते समय हमारे प्रधानमंत्री को उस ध्येय का अवश्य ही ध्यान रहा होगा, जिसे उन्हें संसार में महात्मा गांधी के उत्तराधिकारी के नाते प्राप्त करना है। वे इस समझौते के लिये इसलिये सहमत हुये हैं कि एक ऐसी गोष्ठी का निर्माण हो जाये, जिसके सम्मुख वे अपने विश्व-शान्ति के ध्येय को रख सकें और राष्ट्रमण्डल की आधारशिला पर ऐसे राष्ट्रसंगठन का निर्माण हो सके, जिसका उत्तरोत्तर प्रसार हो और जिससे विश्व-शांति का हित साधन हो।

इन शब्दों के साथ मैं इस प्रस्ताव का समर्थन करता हूं।

***श्री कामेश्वर सिंह** (बिहार : जनरल): अध्यक्ष महोदय, आपकी अनुमति से मैं इस अवसर पर माननीय प्रधानमंत्री को उनकी सफलता के लिये विनयपूर्वक बधाई देता हूं। वे परस्पर विरोधी विचार-धाराओं से अलग रहे हैं और स्थिति का यथार्थ दर्शन करके भारत को एक ऐसे प्रतिष्ठित पद पर आसीन किया है कि अब वह विश्व-शान्ति की अभिवृद्धि करने में समर्थ है।

भारत को अब सभी ने एक स्वतंत्र देश स्वीकार कर लिया। उसके सर्वसत्ताधारी जनतंत्रात्मक गणराज्य होने पर हमारे देशवासी पहले की तरह सम्राट के प्रति निष्ठा नहीं रखेंगे, उसने संसार में अपनी प्रतिष्ठा को बनाये रखना है और यह तभी सम्भव होगा, जब हमारा देश वैदेशिक तथा आन्तरिक मामलों में सभी बन्धनों से मुक्त हो जाये। अब भारत के लोगों में ही सर्वसत्ता सन्निहित होगी और अब वे अन्य देशवासियों के साथ अपना माथा भी ऊंचा कर सकेंगे।

वर्तमान काल में कोई भी देश अन्य देशों से अलग नहीं रह सकता है। विशेषत: हमारे जैसे देश के लिये, जिसने हाल ही में अपनी बेड़ियां काटी हैं और अपने पैरों पर खड़ा होने के लिये बहुत प्रयत्नशील है, यह सोचना भी असम्भव है कि वह अन्य देशों से कोई सरोकार नहीं रखेगा। यदि उसने यह रुख अपनाया तो उसकी उन्नति ही अवरुद्ध न हो जायेगी, बल्कि उसकी स्वतंत्रता भी संकट में पड़ जायेगी। इसलिये राष्ट्रमण्डल में रहने के लिये अपने सुयोग्य प्रधानमंत्री द्वारा सहमत होकर उसने बहुत राजनीतिज्ञता का परिचय दिया है। अब इस राष्ट्रमण्डल का प्रकार बदल गया है और उसने एक नया रूप धारण

[श्री कामेश्वर सिंह]

कर लिया है। राष्ट्रमण्डल के सदस्यों ने अभिसमयानुसार तथा समझौता करके उसका आकार-प्रकार बदल दिया है। इस पर जोर दिया गया है कि सम्राट के प्रति निष्ठा राष्ट्रमण्डल का आधार नहीं है। किन्तु भारत इंग्लैंड तथा उपनिवेशों के सम्राट को प्रतीक रूप में राष्ट्रमण्डल का प्रमुख मानने के लिये सहमत हो गया है यह सब कुछ एक बहुत बड़े आदर्श को दृष्टि में रखकर अर्थात् विश्व में शान्ति और सम्पन्नता के साम्राज्य को स्थापित करने के आदर्श को दृष्टि में रखकर आपस में समझौता करके किया गया है। जब कभी भारत अथवा कोई अन्य देश यह समझे कि इस संगठन में रहने से उसके राष्ट्रीय आदर्शों तथा उसकी आकांक्षाओं की पूर्ति नहीं हो सकती है तो वह उसे त्याग सकता है। एक विशेष उद्देश्य को सामने रखकर यह समझौता किया गया है और यदि कोई पक्ष इस उद्देश्य की पूर्ति के लिये कार्य नहीं करता है तो उसे भंग किया जा सकता है। हमारे प्रधानमंत्री ने स्पष्ट शब्दों में यह कह दिया है कि इस समझौते का यह अर्थ नहीं है कि भारत किसी गुट में सम्मिलित होने जा रहा है। जनतंत्र के सिद्धान्तों में अटल विश्वास रखने के कारण भारत इसके अलावा कोई अन्य कदम भी नहीं उठा सकता था। यदि उसने उन शक्तियों का समर्थन किया होता जो इस समय संसार में गुप्त रूप से स्वेच्छाचारिता फैला रही हैं तो उसने अपने प्रिय आदर्शों का बलिदान कर दिया होता। उससे यह नहीं देखा जा सकता कि मनुष्य को मशीन का पुर्जा बनाने वाली किसी विचारधारा को अपना-कर मनुष्य की स्वतंत्रता और उसके आत्मविश्वास का बलिदान किया जाये।

भारत को अपने राष्ट्रीय हितों की ही चिन्ता करनी है। वर्तमान काल की आवश्यकताओं तथा परिस्थितियों से वशीभूत होकर ही उसने राष्ट्रमण्डल से निकट सम्पर्क स्थापित किया है।

पिछली घटनाओं से यह प्रमाणित होता है कि राष्ट्रमण्डल के वर्तमान ढांचे में रहकर भारत संसार के प्रश्नों का निर्णय कर सकता है। इसे सभी ने स्वीकार किया है कि दक्षिणपूर्वी एशिया में वह सब से अग्रगामी देश है। उसके इतिहास को तथा उसकी भौगोलिक स्थिति को देखते हुये यह कहा जा सकता है कि वह विश्व में शान्ति स्थापित करने में अवश्य ही समर्थ होगा। किन्तु वह इस कार्य को तभी कर सकता है जब उसकी सैनिक तथा आर्थिक स्थिति सुदृढ़ हो। यह स्थिति राष्ट्रमण्डल के देशों तथा अमेरिका के सहयोग से सुदृढ़ हो सकती है। इसलिये इस समय जिस अशान्ति की बाढ़ में संसार के सभी भू-भाग डूब रहे हैं और जिससे मानवी स्वातन्त्र्य के आधारभूत सिद्धान्तों के ही मिट जाने की आशंका है उसे रोकने के लिये इससे अच्छी सन्धि हो नहीं सकती थी।

कुछ लोगों ने हमारे प्रधानमंत्री महोदय पर यह आरोप लगाया है कि इस देश का ब्रिटिश साम्राज्यवाद से गठबंधन करके उन्होंने एक अपराध किया है। इससे बड़ी झूठ और

कुछ हो नहीं सकती। जब हमें राष्ट्रमण्डल को किसी समय भी त्यागने की स्वतंत्रता प्राप्त है तो इस प्रकार के आरोप निराधार हैं। उनके सम्बन्ध में सभी बातें जानने के कारण हमें इसका विश्वास है कि जब कभी वे राष्ट्रमण्डल के देशों के पारस्परिक विचार-विमर्श में भाग लेंगे तो उसका प्रकार ही बदल जायेगा और विश्व-शान्ति सन्निकट आ जायेगी।

***बेगम ऐजाज रसूल** (संयुक्तप्रान्त : मुस्लिम): श्रीमान्, कल माननीय प्रधानमंत्री ने जिस प्रस्ताव को उपस्थित किया था उसका हृदय से समर्थन करने के लिये मैं उपस्थित हुई हूं और इस सभा में जो बधाइयां दी गई हैं उनमें मैं अपना योग भी देती हूं। मुझे आश्चर्य यह है कि प्रधानमंत्री ने राष्ट्रमण्डल में भारत के रहने के सम्बन्ध में जो निर्णय किया है उसकी बहुत आलोचना की गई है। चूंकि यह समाचार समाचार-पत्रों में प्रकाशित हो गया था इसलिये इस देश के तथा विदेश के साधारणतया सभी लोगों ने प्रधानमंत्री के कार्य का समर्थन किया है। इसलिये मुझे यह आशा थी कि भारत को संसार की दृष्टि में ऊंचा उठाने के लिये तथा उसकी प्रतिष्ठा बढ़ाने के लिये उन्होंने जो कार्य किया है उसका समर्थन इस सभा के अधिकांश सदस्य करेंगे। राष्ट्रमण्डल सम्मेलन और प्रधानमंत्रियों के सम्मेलन में भारत के प्रधानमंत्री जिस उच्च पद पर आसीन रहे उसे देखकर सभी भारतीय गर्व से फूले नहीं समाये और अब इस सम्बन्ध में कुछ भी सन्देह नहीं रह गया है कि आज संसार के राजनीतिज्ञों के बीच हमारे प्रधानमंत्री को जो प्रतिष्ठा प्राप्त है वह अन्य किसी प्रधानमंत्री को प्राप्त नहीं है। वे आज इसकी बाट देख रहे हैं कि भारत एशिया का नेतृत्व ग्रहण करेगा। मैं यह कह सकती हूं कि एशिया में भारत की जो स्थिति है उसके कारण ही हमारे प्रधानमंत्री को नेतृत्व की शक्ति प्राप्त नहीं है बल्कि राजनैतिक क्षेत्र में भारत के स्वतंत्र होने के उपरांत पिछले दो वर्षों में तथा महात्मा गांधी के निर्देशन में कई वर्षों तक उन्होंने जिस राजनीतिज्ञता का परिचय दिया है उसके कारण भी वे इस नेतृत्व के लिये समर्थ हैं। श्रीमान्, आलोचकों ने मुख्यत: यही प्रश्न पूछा है कि राष्ट्रमण्डल में रहने से भारत को क्या लाभ होगा? श्रीमान्, ब्रिटेन की तुलना में इस देश की राजनैतिक तथा आर्थिक स्थिति का पंडित कुंजरू, श्री मुन्शी तथा अन्य लोगों ने बड़ी योग्यता से विवेचन किया है। हम यह भूल नहीं सकते कि भारत में ब्रिटेन का शासन होने के कारण हमने उसी प्रकार की विचारधारा अपना ली है जो ब्रिटेन तथा राष्ट्रमण्डल के देशों को प्रिय है। ब्रिटेन तथा ब्रिटेन के राजनीतिज्ञों की इस कारण प्रशंसा की जा सकती है कि भारत में 150 वर्ष तक शासन करने पर भी यहां से चले जाने के बाद वे इस देश की सद्भावना तथा मित्रता प्राप्त कर सके हैं। परन्तु मेरे विचार से यह भारत की तथा उसके प्रधानमंत्री की इस कारण और भी अधिक प्रशंसा की जा सकती है कि उन्होंने भारत में ब्रिटेन के प्रति फैले हुये सन्देह और अविश्वास को मिटा दिया और भारत की

[बेगम ऐजाज रसूल]

मैत्री प्राप्त करने के लिये जो लोग आगे बढ़े थे उन्हें गले लगा लिया ताकि भारत शान्ति और संपन्नता के मार्ग पर अग्रसर हो सके। श्रीमान्, मेरे विचार से इस प्रस्ताव का विरोध तथा इसकी आलोचना मुख्यत: अविश्वास के कारण की जा रही है और केवल अविश्वास के कारण ही नहीं बल्कि भय के कारण भी की जा रही है। मेरे विचार से हमें इस भय को त्याग देना चाहिये और यह समझना चाहिये कि अब स्थिति वह नहीं रह गई है जो पहले थी। अब भारत एक स्वतंत्र देश है और अपने भाग्य का विधायक है। हम लोगों को, जिनका भारत की महानता पर विश्वास है, यह समझना चाहिये कि जब तक हम सन्देह और अविश्वास जैसी छोटी बातों को नहीं छोड़ेंगे और मैत्री करने के लिये जो लोग आगे बढ़ते हैं उन्हें अपनाते नहीं हैं तब तक हम उन्नति नहीं कर सकते हैं। श्रीमान्, मैं कह चुकी हूं कि भारत में इस समय कई बातें ऐसी हैं जिनका ब्रिटेन की विचारधारा से साम्य है। मेरे विचार से हमें इसे स्वीकार करने में संकोच नहीं होना चाहिये कि भारत में इस समय जो जनतंत्रात्मक प्रणाली प्रचलित है उसका आधार ब्रिटेन की ही प्रणाली है। हम यह जानते ही हैं कि जनतंत्रात्मक राष्ट्रों में भारत सबसे अल्पवयस्क राष्ट्र है। जिस प्रकार ब्रिटेन ने अपनी जनतंत्रात्मक संस्थाओं का निर्माण किया है और पिछली कुछ शताब्दियों से उन्हें चलाते आये हैं उसे हम पसन्द करते हैं और यदि हम ब्रिटेन के जनतंत्र के मार्ग पर चलते हैं तो हमें इसका विश्वास रहता है कि हम ठीक मार्ग पर चल रहे हैं। आज भारत में हमारी संस्थायें, हमारा संसदात्मक जीवन, हमारा स्वायत्त-शासन, हमारा शासनतंत्र आदि बहुत कुछ ब्रिटिश प्रणाली पर ही आधृत हैं। ब्रिटिश प्रणाली के अनुसार ही हमारी सेना तथा सुरक्षा संगठनों का निर्माण हुआ है। इसलिये राष्ट्रमण्डल में रहने से हमें अवश्य ही लाभ होगा।

यह कहा गया है कि ब्रिटेन एक गरीब देश है और वह हमें आर्थिक सहायता न दे सकेगा। हमें ब्रिटेन की आर्थिक सहायता की आवश्यकता नहीं है। हम अपने उद्योग-धन्धों तथा अपने साधनों के विकास द्वारा भारत को अवश्य ही समृद्धिशाली बना सकते हैं। हमें किसी भी देश की आर्थिक सहायता की आवश्यकता नहीं है। किन्तु हमें अन्य प्रकार की सहायता, पथप्रदर्शन, परामर्श तथा कला-सम्बन्धी परामर्श की अवश्य ही आवश्यकता है क्योंकि हम अपनी इच्छा के अनुसार भारत का विकास करना चाहते हैं।

इसमें कोई सन्देह नहीं कि इस समय ब्रिटेन और राष्ट्रमण्डल के देश विश्व-शान्ति के लिये सबसे अधिक प्रयत्नशील हैं। भारत सदा से शान्ति स्थापना का समर्थक रहा है और वह अवश्य ही उन देशों के साथ सहयोग करेगा जो विश्व में शान्ति स्थापित करना

चाहते हैं, जो युद्ध न करके सम्पन्न होना चाहते हैं और संसार के अन्य देशों को सम्पन्न होने देना चाहते हैं। इसलिये यह समयोचित ही है कि भारत राष्ट्रमण्डल में रहे। मैं इसमें कुछ भी हानि नहीं देखती हूं। मेरे विचार से भारत के ऐसे देशों के साथ रहने से, जो शान्ति-स्थापना के लिये प्रयत्नशील हैं, उसे लाभ ही होगा।

हम इसे भी नहीं भूल सकते हैं कि भारतीय विचारधारा साम्यवाद के विपरीत है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि हम भारत में साम्यवाद का आगमन नहीं चाहते हैं और हम यह जानते हैं कि ब्रिटेन और राष्ट्रमण्डल के देश साम्यवाद का विरोध कर रहे हैं। इसलिये हमारा तथा इन देशों का समान उद्देश्य है। यह बार-बार कहा गया है कि यदि कोई ऐसा अवसर आये जब भारत यह समझे कि राष्ट्रमण्डल के देशों के साथ रहने से उसे हानि उठानी पड़ेगी तो उसे त्याग देने में उसके लिये कोई बाधा न होगी। इसलिये मेरी यह धारणा है कि राष्ट्रमण्डल में रहने से भारत को हर प्रकार लाभ होगा और साथ ही वह अपनी प्रतिष्ठा को भी बनाये रख सकेगा।

इन शब्दों के साथ श्रीमान्, मैं माननीय प्रधानमंत्री के प्रस्ताव का हृदय से समर्थन करती हूं।

***श्री प्रभुदयाल हिम्मतसिंहका** (पश्चिमी बंगाल : जनरल): अध्यक्ष महोदय, माननीय प्रधानमंत्री ने जिस प्रस्ताव को उपस्थित किया है उसका मैं हृदय से समर्थन करता हूं मैंने यह देखा कि इस सभा में इसका विरोध केवल सन्देह के कारण किया गया है। यह तर्क उपस्थित किया गया है घोषणा में जो कुछ दिखाई देता है उससे कहीं अधिक उसमें छिपा हुआ है। किन्तु माननीय प्रधानमंत्री स्पष्ट शब्दों में यह कह चुके हैं कि वे किसी ऐसी बात के लिये सहमत नहीं हुये हैं जिसका उल्लेख घोषणा में नहीं है। वास्तव में यह आसानी से समझ में आ सकता है कि जो कुछ घोषित किया गया है उसके अतिरिक्त अन्य कोई बात छिपाकर नहीं रखी गई है।

यह कहा गया है कि इस प्रकार का समझौता करने से भारत को हानि उठानी पड़ेगी। किन्तु मेरा यह कहना है कि राष्ट्रमण्डल का सदस्य बने रहने से किसी प्रकार की असुविधा का सामना न करना पड़ेगा। इसके विपरीत इस कदम से भारत को कई प्रकार से वास्तविक लाभ होगा। यही कारण है कि इस देश के लोगों ने इस समझौते का स्वागत किया है।

श्रीमान्, जैसा कि मुझसे पहले बोलने वाले वक्ता कह चुके हैं, भारत की आर्थिक तथा रक्षा-सम्बन्धी व्यवस्था तथा अन्य प्रकार की व्यवस्था इंग्लैंड की आर्थिक तथा वाणिज्य सम्बन्धी व्यवस्था पर आधृत है। इंग्लैंड के साथ इतने वर्षों से सम्बन्ध रहने के कारण हमारी विचारधारा, हमारी कार्यप्रणाली तथा हमारा दृष्टिकोण राष्ट्रमण्डल के अन्य देशों के समान ही है। हमें इंग्लैंड से एक बहुत बड़ी धनराशि वसूल करनी है। इन सब बातों

[श्री प्रभुदयाल हिम्मतसिंहका]

के कारण हमें राष्ट्रमण्डल के देशों के साथ, जो पहले ब्रिटिश राष्ट्रमण्डल के राष्ट्र कहे जाते थे, सम्बन्ध बनाये रखना है। प्रोफेसर शाह ने कहा है कि माननीय प्रधानमंत्री ने इस सभा के सम्मुख एक ऐसे कार्य का प्रस्ताव रखा है जिसे वे सम्पन्न कर चुके हैं और इस सभा से अब एक ऐसे कार्य का अनुसमर्थन करने के लिये कहा जा रहा है जिसे करने का उन्हें अधिकार प्राप्त नहीं था। मेरी समझ में नहीं आता कि यह किस प्रकार तर्कसंगत है। इस सभा ने स्पष्ट शब्दों में इंग्लैंड जाने और प्रधानमंत्रियों के प्रस्तावित सम्मेलन में भाग लेने का अधिकार दिया था। मैं यह कह सकता हूं कि अधिकांश लोग इस समझौते के पक्ष में हैं और बहुत कम लोगों की यह धारणा होगी कि इस देश ने अपने लिये जो स्थिति स्वीकार की है उसे ध्यान में रखते हुये प्रधानमंत्री ने जो कार्य किया है उसके सम्पन्न होने की कोई भी सम्भावना थी। राष्ट्रमण्डल के अन्य देशों की सम्राट सम्बन्धी विचारधारा से, जो सम्राट को राज्य का प्रमुख मानते हैं, स्वतंत्र सर्वसत्ताधारी गणराज्य का समन्वय किया गया है। माननीय प्रधानमंत्री ने एक बहुत कुछ असम्भव कार्य को सम्पन्न करके दिखाया है और मैं इस समझौते की घोषणा तथा प्रधानमंत्री के प्रस्ताव का हृदय से समर्थन करता हूं।

***मि. फ्रेंक एन्थानी** (मध्यप्रान्त और बरार : जनरल): अध्यक्ष महोदय, मैं यह जानता हूं कि इस सभा के कुछ सदस्य भले ही कुछ न कहें परन्तु यह समझेंगे अवश्य कि इस प्रस्ताव के सम्बन्ध में मेरी पूर्वनिश्चित धारणा है और मैं अवश्य ही इसके पक्ष में हूं। श्रीमान्, मैं यह समझता हूं कि एंग्लो-इण्डियन होने के नाते मैं सौभाग्य से इस प्रस्ताव के सम्बन्ध में ठीक-ठीक बातें कह सकता हूं। मुझे इसका विश्वास है कि मैं अपने भारतीय देशवासियों का दृष्टिकोण समझ सकता हूं और साथ ही बहुत से अंग्रेजों का भी दृष्टिकोण समझ सकता हूं।

श्रीमान्, अपने अन्य तर्कों को उपस्थित करने से पूर्व मैं प्रोफेसर शाह की एक बात का उत्तर देना चाहता हूं जिसका कुछ अंश में श्री अल्लादी उत्तर दे चुके हैं। उनकी बातों से मैं समझ सका, भले ही उन्होंने इस धारणा के विरुद्ध कई बातें कहीं, कि उनमें कटुता ही न थी बल्कि पुराना विष भी था। प्रोफेसर शाह ने 'अनुसमर्थन' शब्द के प्रयोग पर आपत्ति की। उनका यह विचार है कि यह शब्द एक निन्दनीय कार्य का घोतक है और यह कि वे सभा के सम्मुख एक ऐसे कार्य को रखना चाहते हैं और उसे मानने के लिये हमें विवश करना चाहते हैं जिसे वे सम्पन्न कर चुके हैं। श्रीमान्, वकील होने के नाते मैं यह कह सकता हूं कि यह तर्क निर्बल ही नहीं बल्कि असंगत भी है। प्रधानमंत्री अपने प्रभुओं अर्थात् भारत के लोगों की ओर से इंग्लैंड गये थे, वे उनके दूत, उनके सर्वश्रेष्ठ दूत के रूप में वहां गये थे और कानून की दृष्टि से यह एक स्वयंसिद्ध बात

है कि जब कोई व्यक्ति अपने प्रभुओं का विश्वास भाजन और दायित्व भाजन दूत बन के जाता है और वे यह समझते हैं कि उसने अपने अधिकारों का दुरुपयोग नहीं किया है और हर प्रकार उनके हितसाधन की चेष्टा की है तो उनकी ओर से उसने जो कोई भी वचन दिया हो उसका अनुसमर्थन करने के लिये वे बाध्य हैं। क्या इस सभा में किसी को यह कहने का साहस है कि उन्होंने अपने अधिकारों का दुरुपयोग किया है? क्या कोई यह कह सकता है कि वर्तमान परिस्थिति में वे भारत के सर्वोच्च हितों की रक्षा के लिये प्रेरित नहीं हुये?

श्रीमान्, मेरा यह विश्वास है कि इस प्रकार के प्रस्ताव का विरोध कई प्रकार की पूर्वनिश्चित धारणाओं के आधार पर अथवा कुछ उद्देश्यों को लेकर किया जाता है। मेरे विचार से सम्भवत: दासत्व की भावना से प्रेरित होकर ही इसका विरोध किया गया है और वह भावना छिपाने पर भी नहीं छिपाई जा सकी है। यह मुझ में आता है कि एक ऐसे देश के जनसाधारण, जो पीढ़ियों से और सम्भवत: सैंकड़ों वर्षों से राजनैतिक दासत्व की बेड़ियों में जकड़ा रहा है, दो सौ वर्षों के राजनैतिक दासत्व के प्रभाव से यकायक मुक्त नहीं हो सकते। मेरे विचार से यह विरोध बहुत कुछ प्रत्यक्षत: आत्मलाघव की भावना से प्रेरित होकर किया जा रहा है यद्यपि इसे स्वीकार नहीं किया गया है। सार्वजनिक क्षेत्र में काम करने वाले कई लोग ऐसे हैं जिन्हें यूरोपीय राष्ट्रों से किसी प्रकार का भी सम्पर्क स्थापित करने में आत्मलाघव का ही अनुभव होता है। उनकी यह धारणा है कि किसी भी यूरोपीय राष्ट्र से सम्पर्क रखने से अवश्य ही यूरोपीय लोगों का प्रभुत्व स्थापित हो जायेगा और एशिया के लोगों को दासत्व स्वीकार करना होगा। मैं फिर यह कहता हूं और मुझे आशा है कि इससे कोई क्षुब्ध न होगा, कि यह सब कुछ उन लोगों के राजनैतिक दासत्व का ही परिणाम है जो नारे लगाकर, सिद्धान्त बघारकर और प्रचार करके अपने राजनैतिक बन्धनों से मुक्त होने का प्रयास करते रहे हैं। उन्हें वास्तविकता से विमुख होकर नारों और सिद्धान्तों का सहारा लेना पड़ा है। वे अपने को जानबूझकर भ्रम में डाले हुये हैं। हम निस्संकोच होकर यह कहते हैं कि एशिया का नेतृत्व भारत को प्राप्त है। हम यह भी निस्संकोच होकर कहते हैं कि यह एक असंगत बात है कि भारत एशिया का नेता भी बना रहे और राष्ट्रमण्डल से राजनैतिक सम्बन्ध भी रखे। मेरा यह अटल विश्वास है कि भारत की परम्परा ऐसी रही है कि उसे एशिया का नेतृत्व स्वीकार करना पड़ेगा और एशिया के राष्ट्र उसे अपना सहज नेता मानेंगे। किन्तु इस परम्परा को प्राप्त करने के लिये हमें प्रयत्न करना है। हम अपने को भ्रम में डालकर तथा वास्तविकता से विमुख होकर और केवल सिद्धान्तों और नारों का सहारा लेकर उसे प्राप्त नहीं कर सकते।

प्रोफेसर शाह ने अपनी वाक्पटुता का परिचय देते हुये एक प्रश्न पूछा था और वह यह था कि इस प्रस्ताव को स्वीकार करने से आखिर क्या लाभ होगा और अपने संतोष

[मि. फ्रेंक एन्थानी]

के लिये उन्होंने अपने प्रश्न का बड़ी वीरता से स्वयं उत्तर दे दिया था। उन्होंने यह पूछा था कि यदि हमें किसी प्रकार का लाभ नहीं होने वाला है और न नुकसान ही होने वाला है तो इस प्रस्ताव को स्वीकार करने अथवा इसका अनुसमर्थन करने का क्या अर्थ है? यह हद दर्जे का राजनैतिक अन्धापन है। सार्वजनिक क्षेत्र में काम करने वाले हमारे कुछ लोग इसी प्रकार के दृष्टिकोण का परिचय देते रहते हैं।

किन्तु वास्तविकता क्या है इसकी ओर किसी ने संकेत नहीं किया है और न किसी ने यही बताया है कि राष्ट्रमण्डल से अलग होने का क्या अर्थ होता। मैं यह नहीं जानता कि हम में से कितने लोग इसे समझते हैं किन्तु इसका एक अर्थ अवश्य होता। हमारे प्रधानमंत्री इसे समझने में समर्थ हैं और इसे समझते हैं। हमें इसे समझना चाहिये कि ब्रिटेन में हमेशा कुछ लोग ऐसे रहे हैं जिन्हें ब्रिटिश शासकों द्वारा पोषित प्रतिक्रियावादी तथा अनुदार समाचार-पत्रों का समर्थन प्राप्त रहा है और जिनका अधिकांश जीवन इस देश में कांग्रेस से संघर्ष करने में बीता है और जिन्होंने हमेशा कांग्रेस को हिन्दुओं की संस्था माना और इसी कारण हिन्दुओं से तथा कांग्रेस से द्वेष करते रहे। ऐसे अंग्रेज हमेशा हिन्दु-विरोधी और कांग्रेस-विरोधी रहे हैं। यदि भारत राष्ट्रमण्डल से अलग हो जाता तो ये लोग आगे बढ़कर इस बहाने अपने देश में भारत-विरोधी भावनाओं को फैलाते। सौभाग्य से हमारे बीच प्रधानमंत्री जैसे सुयोग्य व्यक्ति हैं। उन्होंने इन प्रतिक्रियावादी और भारत-विरोधी लोगों पर प्रहार ही नहीं किया है किन्तु इंग्लैंड में इस देश के जो नये मित्र उत्पन्न हो रहे हैं उन्हें भी शक्ति प्रदान की है। मुझे इसका विश्वास है कि राष्ट्रमण्डल से अलग होने पर पहले तो ब्रिटेन और भारत के सम्बन्ध शिथिल हो जाते और अन्ततोगत्वा इस प्रकार सम्बन्ध-विच्छेद हो जाता कि फिर सम्बन्ध जुड़ ही नहीं सकता। मेरे वे मित्र जो नारे लगाते रहते हैं और सिद्धान्त बघारते रहते हैं अपना हृदय टटोल कर इसका उत्तर दें कि क्या भारत इस समय इस स्थिति में है कि वह संसार के कुछ शक्तिशाली देशों से सम्बन्ध-विच्छेद कर ले? मैं यह भी कहूंगा कि राष्ट्रमण्डल से अलग होने से केवल ब्रिटेन से ही सम्बन्ध शिथिल होकर अन्त में सम्बन्ध-विच्छेद न होता बल्कि अमेरिका से भी सम्बन्ध-विच्छेद हो जाता। हमें इस बारे में किसी प्रकार का भ्रम न होना चाहिये। मैं अन्धे देश-प्रेम अथवा चाणक्यनीति का समर्थन नहीं कर रहा हूं। मेरे विचार से मैकाले ही ने यह कहा था कि ब्रिटिश कूटनीति एक ओर नैतिक सिद्धान्तों और दूसरी ओर समयोचित व्यवस्था पर आधृत है। मेरे विचार से वे लोग जो भारत का निर्माण करने जा रहे हैं समयोचित व्यवस्था की उपेक्षा नहीं कर सकते। मैं अवसरवाद की नहीं बल्कि यथार्थवाद की चर्चा कर रहा हूं। इसे सभी मानते हैं कि हमारी सभी योजनाओं का तथा आशाओं का फलीभूत

होना तथा भारत की आर्थिक तथा औद्योगिक व्यवस्था और सैनिक व्यवस्था भी बहुत कुछ ब्रिटेन और अमेरिका से हमारे मैत्री के सम्बन्ध बनाये रखने पर निर्भर है।

मैं उन लोगों में से हूं जिनकी यह धारणा है कि भारत अन्तर्राष्ट्रीय जगत में एकाकी जीवन व्यतीत नहीं कर सकता है और न व्यतीत करने का साहस ही कर सकता है। सार्वजनिक क्षेत्र में काम करने वाले हमारे कुछ लोग भले ही एकाकी जीवन और तटस्थता की चर्चा करें किन्तु इसका वास्तविकता से कोई सम्बन्ध नहीं है और न अन्तर्राष्ट्रीय जगत में इसका कोई स्थान है। पूर्ण तटस्थता न केवल एक काल्पनिक बात है बल्कि वर्तमान काल में वह एक अवास्तविक और अलब्ध्य आदर्श सिद्ध हो चुका है। अन्तर्राष्ट्रीय जगत में एकाकी जीवन व्यतीत करने से भारत को पता लगता, जैसा कि बर्मा को पता लग चुका है कि केवल सैद्धान्तिक स्वाधीनता निरर्थक एकाकी जीवन ही है। वास्तविकता से विमुख होकर केवल सैद्धान्तिक स्वाधीनता के पोषण से परिश्रम, अभाव, नैराश्य तथा एकाकीपन के युग का ही प्रादुर्भाव होगा।

मैं इस सभा के सामने एक बात और रखना चाहता हूं। जो लोग इस प्रस्ताव का विरोध कर रहे हैं उनका पाकिस्तान के प्रति कैसा रूख है? पाकिस्तान से अभी तक हमारे सम्बन्ध उतने मैत्रीपूर्ण नहीं हो सके हैं जितने कि हम में से बहुत से लोग चाहते हैं। राष्ट्रमण्डल की संसदों के प्रतिनिधियों का जो सम्मेलन हुआ था उसमें भारत का एक प्रतिनिधि मैं भी था और मुझे विश्वास है कि मेरे सहकारी मेरी इस बात का समर्थन करेंगे कि पाकिस्तान के कई प्रतिनिधियों ने निश्चित रूप से इस प्रकार की भावना उत्पन्न करने का प्रयास किया कि भारत में कांग्रेस का प्रभुत्व है और वह ब्रिटेन विरोधी है और यह कि भारत नहीं चाहता कि वह राष्ट्रमण्डल में रहे। वे इस प्रकार की भावना इसलिये उत्पन्न करना चाहते थे कि अंग्रेज उनकी ओर हो जायें और भारत का विरोध करने लगे। मेरे विचार से यदि हम राष्ट्रमण्डल से अलग हो जाते तो हमारे इस कार्य से पाकिस्तान के वे लोग अवश्य ही प्रसन्न होते जो भारत के प्रति किसी प्रकार का भी मैत्री भाव नहीं रखते हैं और मुझे विश्वास है कि आज भारत से ब्रिटेन जिस प्रकार का मैत्रीपूर्ण व्यवहार कर रहा है और जिन साधनों को उसे प्रदान कर रहा है उनका पाकिस्तान ही उत्तरोत्तर उपभोग करता। मेरे विचार से मेरे कई मित्रों ने इस ओर ध्यान नहीं दिया है।

राष्ट्रमण्डल का एक सदस्य जिस जातीयता तथा जातीय अत्याचार का परिचय दे रहा है उससे मैं तथा कोई भी भारतीय जिसे अपने आत्मसम्मान का ध्यान है, क्षुब्ध तथा क्रुद्ध होगा। परन्तु यदि किसी राष्ट्र से सम्बन्ध स्थापित करने के पूर्व हम उससे यह मनवाना चाहें कि वह अपने व्यवहार में कुछ सर्वोत्कृष्ट नैतिक सिद्धान्तों का अनुसरण करेगा तो सम्भवत: हम संसार के किसी राष्ट्र से भी सम्बन्ध स्थापित न कर सकेंगे। क्या हमें केवल

[मि. फ्रेंक एन्थानी]

इसी कारण कि राष्ट्रमण्डल के एक या दो राष्ट्र दुष्ट हैं, नैराश्य और आत्मलाघव की भावना से प्रेरित होकर राष्ट्रमण्डल से अलग होकर उन सब लाभों को त्याग देना चाहिये जो हमें राष्ट्रमण्डल के जनतंत्रप्रेमी सदस्यों से प्राप्त हो सकते हैं और प्राप्त हो रहे हैं।

जब मैं यह कहता हूं कि मेरा यह विश्वास है कि राष्ट्रमण्डल में रहने से हम दक्षिण अफ्रीका से अपने सम्बन्धों को नहीं सुधार सकते हैं तो सम्भवत: मेरी इस बात से कुछ लोगों को ठेस पहुंचे किन्तु मेरा यह विश्वास है कि हमारे राष्ट्रमण्डल में रहने से अमेरिका और इंग्लैंड के साधन भारत को उपलब्ध होंगे और उनका प्रभाव तथा उनकी बहुत सी अप्रत्यक्ष बातें भारत के पक्ष में होंगी और हमारी स्थिति बिगड़ेगी नहीं। हो सकता है कि मैं गलती कर रहा हूं किन्तु मेरा यह विश्वास है कि जिस सीमा तक हम शक्तिशाली होंगे उसी सीमा तक दक्षिण अफ्रीका का प्रश्न भी हल होता जायेगा। इसीलिये मैं यह कहता हूं कि हमारी नीति का आधार विस्तृत होना चाहिये और भारत को तुरन्त ही शक्तिसंचय का प्रयास करना चाहिये। सम्भव है इसमें पांच वर्ष लगे अथवा दस वर्ष—किन्तु कोई भी यथार्थवादी और समझदार व्यक्ति यह समझ सकता है कि आजकल के संसार में किसी देश की शक्ति उसकी सैनिक शक्ति से ही समझी जाती है। इसीलिये मेरी यह धारणा है कि जब हम उसी प्रकार सैनिक प्रदर्शन करने में समर्थ होंगे जैसे जापान ने डर्बन में किया था तभी हम दक्षिण अफ्रीका और भारत की गुत्थी को भी सुलझा सकेंगे। परन्तु जैसा कि मैं कह चुका हूं केवल इस कारण राष्ट्रमण्डल से अलग रहना उचित न होगा कि उसमें एक या दो दुष्ट सदस्य हैं।

अन्त में श्रीमान्, मैं केवल एक बात कहकर समाप्त करना चाहता हूं। जैसा कि मैं कह चुका हूं, यह भारत के लिये एक सौभाग्य की बात है कि इस समय हमारे बीच ऐसे उच्च कोटि के लोग हैं जो हाल की राजनैतिक घटनाओं से उत्पन्न कटुता से ऊपर उठ सकते हैं, भले ही प्रोफेसर शाह में यह सामर्थ्य न हो और जो राजनैतिक संघर्ष के तूफान के शान्त न होते हुये भी यह स्पष्टतया देख ही नहीं सकते हैं बल्कि स्पष्टतया इसका निर्णय भी कर सकते हैं कि भारत का हितसाधान सर्वोत्तम रूप से किस प्रकार हो सकता है। क्या इस सभा के सम्मुख कोई व्यक्ति यह कह सकता है कि हमारे प्रधानमंत्री से अधिक किसी अन्य व्यक्ति ने नि:स्वार्थ भाव से लोगों के प्रति अपने कर्त्तव्य का पालन किया है? यदि हम इस प्रश्न का उत्तर देते हैं और सच पूछिये तो हमें देना ही होगा, तो अपनी जानकारी के आधार पर उन्होंने जो भी निर्णय किया है उससे भारत का हितसाधन ही होगा। मुझे इसका भी विश्वास है उनको हममें से किसी से भी अधिक जानकारी है। इसलिये इस सभा के सम्मुख जो प्रस्ताव रखा गया है उसका प्रत्येक भारतीय को हृदय से समर्थन करना ही चाहिये।

***माननीय श्री सत्यनारायण सिन्हा** (बिहार : जनरल): श्रीमान्, मेरा यह प्रस्ताव है कि अब इस प्रश्न पर मत लिया जाये।

अध्यक्ष: प्रस्ताव यह है कि:

इस प्रश्न पर मत लिया जाये।

मेरे विचार से अधिकांश सदस्य बहस समाप्त करने के पक्ष में हैं।

***माननीय श्री जवाहरलाल नेहरू** (संयुक्तप्रान्त : जनरल): अध्यक्ष महोदय, कल से इस प्रस्ताव पर बहुत वादानुवाद हो चुका है और कई माननीय सदस्य इस प्रस्ताव के पक्ष में बोल चुके हैं। वास्तव में मैं तो यह कहूंगा कि उनमें से कई सदस्य इसके समर्थन में इतना आगे बढ़ गये जितना कि मैं भी नहीं बढ़ता। उन्होंने कुछ सम्भाव्य परिणामों को तथा कुछ सन्निहित अर्थ को बताया जिसे अपनी ओर से मैं न तो स्वीकार ही करता और न पसन्द ही करता। किन्तु हम सबको तथा हममें से प्रत्येक व्यक्ति को भविष्य की कल्पना अपने ढंग से करने की स्वतंत्रता है।

जहां तक मेरे इस प्रस्ताव और लन्दन की घोषणा का सम्बन्ध है, हमें केवल इन बातों को देखना है। पहले तो हमें यह देखना है कि उससे हमारे वचनों की पूर्ति होती है या नहीं अथवा कम से कम उनमें से किसी का खण्डन तो नहीं होता है अर्थात् हमें यह देखना है कि इससे भारत उन्नति के मार्ग में अग्रसर होता है या नहीं अथवा इससे भारत के अपने सर्वसत्ताधारी स्वतंत्र गणराज्य के लक्ष्य की प्राप्ति के मार्ग में कोई बाधा तो नहीं पड़ती। दूसरी बात हमको यह देखनी है कि आगामी कुछ वर्षों में इससे भारत को कुछ सहायता प्राप्त होगी या नहीं अथवा यह विभिन्न क्षेत्रों में भारत की गतिशील उन्नति के मार्ग में बाधक तो नहीं सिद्ध होगा। एक प्रकार से हमने राजनैतिक प्रश्न को हल कर लिया है परन्तु राजनैतिक प्रश्न का देश की आर्थिक स्थिति से घनिष्ठ सम्बन्ध है। हमारे सम्मुख कई आर्थिक कठिनाइयां उपस्थित हैं। इसमें कोई सन्देह नहीं कि ये हमारे घरेलू प्रश्न हैं किन्तु यह स्पष्ट है कि हम जिस नीति को भी अपनायें उसके मार्ग को संसार के अन्य देश प्रशस्त कर सकते हैं अथवा उसमें बाधा डाल सकते हैं। हमें यह देखना है कि इस प्रस्ताव से, जो घोषणा में सन्निहित है, हमारी आर्थिक अथवा अन्य प्रकार की उन्नति गतिशील हो सकती है अथवा नहीं? यह दूसरी कसौटी है। मैं इसे स्वीकार करने के लिये तैयार हूं कि बिना बाहर से मदद मांगे हुये भी हम आगे बढ़ सकते हैं। परन्तु इस प्रकार हमारी समस्या अधिक जटिल हो जायेगी और उसे हल करने में अधिक समय लगेगा। इस प्रकार उसे हल करना कोई आसान काम नहीं है।

तीसरी कसौटी यह है कि आजकल के संसार में क्या इससे शान्ति को चिरस्थायी बनाने और युद्ध से पीछा छुड़ाने में सहायता मिलती है या नहीं। कुछ लोग किसी समूह

[माननीय श्री जवाहरलाल नेहरू]

विशेष को अथवा किसी गुट विशेष को प्रोत्साहित करने की चर्चा करते हैं। हम सब अपने को तथा अपने मित्रों को देवता समझने और अन्य लोगों को दानव समझने के आदी हैं। हम सब यह समझते हैं कि हम तो उन्नति के मार्ग में ले जाने वाली शक्तियों के तथा जनतंत्र के पक्ष में हैं और अन्य लोग उनके पक्ष में नहीं हैं। मैं आपको यह बताना चाहता हूं कि भारत पर तथा भारतीयों पर गर्व करते हुये भी मैं निस्संकोच यह नहीं कह सकता हूं कि हम उन्नति अथवा जनतंत्र के मार्ग में सबसे आगे हैं।

पिछले दो तीन वर्षों का समय हमारे लिये बहुत कठिन समय था और उस बीच हमने बहुत मानहानि सही। हम इस काल में भी लड़खड़ाये नहीं। यह बात हमारे पक्ष में है कि हम इन कठिनाइयों के होते हुये भी जीवित रह सके। परन्तु मुझे आशा है कि उनसे हमने शिक्षा ग्रहण की है। अपनी ओर से मैं अब किसी व्यक्ति की अथवा किसी राष्ट्र की निन्दा करने में सावधान रहता हूं क्योंकि इन बातों के सम्बन्ध में कोई भी व्यक्ति अथवा राष्ट्र अकलंक नहीं है। इसके अतिरिक्त स्वयं उसी मार्ग पर चलते हुये भी अन्य राष्ट्रों को दोषी ठहराने अथवा युद्ध प्रेमी घोषित करने की मनोवृत्ति अधिकाधिक देखी जाती है।

संसार में चारों ओर देखने पर कुछ नीतियां अच्छी जान पड़ती हैं और कुछ बातें बुरी दिखाई देती हैं और यह विचार उठता है कि कुछ बातें खतरनाक हैं और उनके कारण युद्ध हो सकता है किन्तु अन्य बातें ऐसी नहीं हैं। किन्तु मुझे जो सबसे आश्चर्यजनक बात दिखाई देती है उसे आपके सामने रखता हूं। यदि आप पिछले तीस या इससे कुछ अधिक वर्षों के समय को स्मरण करें, जिसके बीच दो युद्ध घटित हो चुके हैं और इन युद्धों के बीच के समय को भी स्मरण करें तो आपके ध्यान में आयेगा कि स्थिति के अनुसार केवल थोड़ी सी हेर-फेर के साथ एक ही प्रकार के नारे लगाये जाते रहे हैं और एक ही प्रकार के दृष्टिकोण से प्रश्नों को हल करने का प्रयास किया गया है और एक ही प्रकार के भय और सन्देह से लोग त्रस्त रहे हैं तथा एक ही प्रकार सभी ओर के दल शस्त्र सज्जित होते रहे हैं तथा युद्ध सन्निकट आता रहा है। 'यह अब अन्तिम युद्ध है' की चर्चा, जनतंत्र के लिये संघर्ष तथा अन्य सभी बातें उसी प्रकार होती रही हैं। युद्ध समाप्त होता है परन्तु वही संघर्ष और वही युद्ध की तैयारी फिर आरम्भ हो जाती है। फिर दूसरा युद्ध छिड़ जाता है। यह एक बहुत ही असाधारण बात है क्योंकि मुझे इसका विश्वास है कि संसार में कुछ व्यक्तियों अथवा समुदायों को छोड़कर जो युद्धकाल में नफा उठाते हैं, शायद ही कोई ऐसा हो जो युद्ध चाहता हो। कोई भी व्यक्ति और कोई भी देश युद्ध नहीं चाहता है। युद्ध के उत्तरोत्तर भीषण होने पर वे उससे और भी दूर भागना चाहते हैं। किन्तु गतकाल के किसी पाप अथवा कर्म अथवा भाग्यवश वे एक ही

दिशा में एक ही गर्त्त की ओर बढ़ते रहते हैं तथा बुद्धिशून्य जन्तुओं के समान एक ही प्रकार के तर्क तथा एक ही प्रकार के संकेत करते रहते हैं।

क्या हम प्रारब्धवशात् यही सब करने के लिये बाध्य हैं? मैं कह नहीं सकता किन्तु मैं युद्ध की चर्चा और युद्ध की तैयारी की जो मनोवृत्ति बढ़ रही है उसके निराकरण के लिये संघर्ष करना चाहता हूं। यह स्पष्ट है कि कोई भी सरकार और कोई भी देश ऐसी स्थिति में पड़ने का साहस नहीं कर सकता कि संकटकाल तो उपस्थित हो जाये किन्तु वह उसके लिये बिल्कुल भी तैयार न हो। जब तक कि हम इतने वीर न हों कि हम महात्मा गांधी की नीति का अनुसरण कर सकें दुर्भाग्यवश हमें भी तैयारी करनी है। यदि हममें पर्याप्त वीरत्व है तो सब कुछ ठीक हो जाता है और हमें इसकी आवश्यकता नहीं हर जाती। मेरा यह विश्वास है कि यदि हममें पर्याप्त वीरत्व हो तो वही नीति ठीक नीति सिद्ध होगी। परन्तु प्रश्न यह नहीं है कि मैं वीर हो जाऊं अथवा आप वीर हो जायें। प्रश्न यह है कि देश में इतना वीरत्व आ जाये कि वह उस नीति को समझ सके और उसका अनुसरण कर सके। मेरे विचार से अभी हमारी बुद्धि और हमारा व्यवहार उस कोटि का नहीं हुआ है। वास्तव में जब हम उस उच्चतम कोटि की चर्चा करने लगते हैं तो हमें स्मरण हो आता है कि पिछले डेढ़ वर्ष में हमारे देश में लोक-व्यवहार निम्नतर स्तर को पहुंच गया था। इसलिये इस देश में हमको व्यर्थ ही महात्माजी के नाम की दुहाई न देनी चाहिये। कम से कम हम तो ऐसा नहीं कर सकते और कोई भी सरकार यह नहीं कर सकती कि वह कहे तो यह कि वह शान्ति स्थापना के पक्ष में है। किन्तु कार्यरूप में कुछ भी न करे। हमें सावधानी से कदम उठाना है और साथ ही अपनी पूरी योग्यता से तैयारी करनी है। यदि कोई अन्य सरकार भी ऐसा करती है तो हम उसको दोष नहीं दे सकते क्योंकि इतना सावधान तो हर एक ही को होना है। किन्तु मुझे तो यह दिखाई देता है कि कुछ सरकारें अथवा बहुत सी सरकारें इससे बहुत आगे बढ़ रही हैं वे हर समय युद्ध की ही चर्चा करती हैं, वे हर समय अपने विपक्षी को ही दोष देती रहती हैं। वे यह सिद्ध करने का प्रयास करती हैं कि विपक्ष पूर्णतया दोषी है, युद्ध प्रेमी है, इत्यादि। वास्तव में वे ऐसा वातावरण उत्पन्न कर देती हैं जिसमें अवश्य ही युद्ध होता है। शान्ति की चर्चा करते हुये अथवा शान्ति के प्रति अपने प्रेम को प्रदर्शित करते हुये वे ऐसा वातावरण उत्पन्न कर देती हैं जिसमें गतकाल में युद्ध ही हुये हैं। आर्थिक अथवा अन्य प्रकार के संघर्षों के कारण ही अन्त में युद्ध होता है। किन्तु मेरे विचार से अब आर्थिक अथवा राजनैतिक संघर्ष के कारण युद्ध छिड़ने नहीं जा रहा है। यदि युद्ध छिड़ने जा रहा है तो वह भय की विभीषिका के कारण, ऐसे भय की विभीषिका के कारण कि विपक्षी अवश्य ही विजयी होगा और वह धीरे-धीरे अपनी शक्ति बढ़ा रहा है और समय पाकर इतना शक्तिशाली हो जायेगा कि उसे पराजित करना असम्भव हो जायेगा। इसलिये प्रत्येक

[माननीय श्री जवाहरलाल नेहरू]

पक्ष शस्त्रसज्जित होता जा रहा है और ऐसे शस्त्रों से सज्जित हो रहा है जो सबसे अधिक घातक हैं। मुझे खेद है कि कुछ विषयान्तर हो गया है।

वर्तमान काल की इस विभीषिका का हम किस प्रकार सामना करें? कुछ लोग कहते हैं अमुक समुदाय शान्ति प्रेमी है उसके साथ हो लीजिये और कुछ लोग कहते हैं कि अमुक समुदाय के साथ हो लीजिये क्योंकि उनके विचारानुसार यह भी एक दूसरी प्रकार की शान्ति और उन्नति का पोषक है। किन्तु मुझे इसका विश्वास है कि इस प्रकार किसी समुदाय का साथ देने से शान्ति का पोषण नहीं हो सकता। वास्तव में इससे भयास्पद वातावरण की ही अभिवृद्धि होती है। फिर मुझे क्या करना चाहिये? अकर्मण्य होकर वैराग्य धारण करने की नीति में मेरा विश्वास नहीं है। आप विरक्त नहीं हो सकते। प्रत्येक समस्या को उसका सामना करके तथा उससे संघर्ष करके ही उसे हल किया जा सकता है। इसलिये जो लोग यह सोचते हैं कि हमारी नीति अकर्मण्य होकर खण्डन करने की नीति है अथवा कर्मशून्य नीति है, वे भ्रम में हैं। इस सम्बन्ध में मेरी कभी भी इस प्रकार की कल्पना नहीं रही। मेरे विचार से हमारी नीति सक्रिय नीति है, एक निश्चित नीति है और लोगों के मस्तिष्क से युद्ध के विचार को निकाल देने की नीति है और यही वह होनी भी चाहिये।

मैं यह जानता हूं कि संसार की इस बृहत् समस्या को हल करने की भारत को क्षमता प्राप्त नहीं है। उसका रूप बदलने में वह बहुत ही कमजोर सिद्ध हो सकता है। यह बात हो सकती है। परन्तु मेरा यह दावा नहीं है कि हमारे प्रयत्नों से हमें अवश्य ही इच्छित फल की प्राप्ति हो जायेगी। किन्तु फिर भी मेरा यह कहना है कि इस सम्बन्ध में भारत को एक सक्रिय तथा निश्चित नीति अपनानी चाहिये और अन्य देशों को भी रणोन्मुख नहीं होने देना चाहिये। इस भयास्पद तथा सन्देहास्पद वातावरण का निराकरण करना चाहिये। हमें इस देश की अथवा उस देश की अत्यधिक प्रशंसा नहीं करनी चाहिये, भले ही वह विश्व में न्यायसंगत व्यवस्था स्थापित करने का दावा करता हो किन्तु विभिन्न देशों में जो अच्छी बातें हों और जो सबको मान्य हों उन पर जोर देना चाहिये। इस प्रकार इन देशों की जो सबसे अच्छी बातें हैं उन्हें हम ग्रहण ही नहीं करेंगे बल्कि जहां तक हो सकेगा इन देशों की आपस की तनातनी को भी कम करेंगे और शान्ति स्थापना में अग्रसर हो सकेंगे। हमें सफलता प्राप्त हो या न हो यह दूसरी बात है। अब हमारे हाथ में यह तो है ही कि हम जिन बातों को ठीक समझते हैं उनकी प्राप्ति के लिये पूरी शक्ति लगाकर काम करें। हम यह इसलिये नहीं करेंगे कि हम डरे हुये हैं और भयग्रस्त हैं। हमने कई भयानक बातों का सामना किया है और मेरे विचार से अब भारत में अथवा संसार में कोई ऐसी बात होने को नहीं रह गई है जिससे हमारे हृदय में भय उत्पन्न हो सके।

किन्तु हम यह नहीं चाहते हैं कि संसार को फिर क्षति उठानी पड़े और एक विध्वंस का सामना करना पड़े जिससे हम लोग अथवा हमारा देश भी छुटकारा नहीं पा सकता। यदि लड़ाई इस देश में न लड़ी जाये और अन्यत्र ही लड़ी जाये किन्तु फिर भी उसका प्रकार विश्वव्यापी और भारतव्यापी भी होगा। हमें इस समस्या को हल करना है।

यह समस्या व्यावहारिक न होकर मनोवैज्ञानिक है यद्यपि हमारे व्यवहार से उसका सम्बन्ध है। मेरे विचार से उसे हल करने में भारत ही कुछ योग दे सकता है। कुछ योग इसलिये दे सकता है कि भले ही हम गांधीजी के अक्षम और अयोग्य अनुयायी हों परन्तु कुछ अंश में हमने उनके उपदेशों को ग्रहण किया है। इसके अतिरिक्त आप देखेंगे कि इन विश्व-संघर्षों में घटना-चक्र क्रमबद्ध होता है और एक घटना से दूसरी घटना उत्पन्न होती है तथा दूषित कर्मों की शृंखला बढ़ती जाती है। युद्ध होता है और उसके समाप्त होने पर उसके कुफल भोगने पड़ते हैं तथा उनके कारण फिर दूसरा युद्ध होता है। यह घटना-चक्र चलता रहता है और प्रत्येक देश कर्म-पाश में अथवा यों कहिये की पाप-पाश में बंध जाता है। अभी तक इन दुराचारों के कारण पश्चिम में युद्ध हुये क्योंकि एक प्रकार ये दुराचार पश्चिमी देशों में ही संकेन्द्रित रहे। मेरा यह अर्थ नहीं है और संसार की राजनीति पर उसका प्रभुत्व रहा है। इसलिये उनके विवादों का, उनके झगड़ों का तथा उनके युद्धों का सारे संसार पर प्रभाव पड़ा है।

सौभाग्य से हमें भारत में यूरोप के समान अपने पूर्वजों से घृणा की देन नहीं मिली है। हम किसी व्यक्ति को अथवा किसी बात को या विचार को पसन्द न करें किन्तु हम यह प्राचीन काल की देन के आधार पर नहीं करते। इसलिये अन्तर्राष्ट्रीय सभाओं और अन्य जगहों में हमारे लिये वास्तविकता का ध्यान रखते हुये तथा निरुद्विग्न होकर इन प्रश्नों का हल करना कुछ आसान हो सकता है क्योंकि हमें अन्य लोगों की सद्भावना प्राप्त होगी और वे हमें अपने पूर्वजों से मिली हुई किसी कटुता के आधार पर सन्देह न करेंगे। यह हो सकता है कि कोई भी देश प्रभावपूर्ण ढंग से तभी कार्य कर सकता है जब उसे कुछ शक्ति प्राप्त हो। इस समय मैं भौतिक अथवा युद्धोपयोगी साधनों के बारे में में सोच रहा हूं। इसका अवश्य एक अर्थ है परन्तु मैं इस समय किसी देश की सामान्य शक्ति के बारे में सोच रहा हूं। एक दुर्बल राष्ट्र जो अपने को ही नहीं सम्हाल सकता यह दूसरों को अथवा संसार को क्या सम्हालेगा। मैं यह चाहता हूं कि यह सभा इन सब बातों पर विचार करे और उसके उपरान्त ही उस छोटे से प्रश्न पर अपना निर्णय दे जो मैंने उसके सामने रखा है क्योंकि मैंने इन सब बातों पर विचार किया है और सबसे अधिक मुझे अपने इस कर्त्तव्य का ध्यान रहा है कि भारत की स्वतंत्रता पर किसी प्रकार की आंच न लगे।

[माननीय श्री जवाहरलाल नेहरू]

यह स्पष्ट है कि जिस गणराज्य को स्थापित करने का हमने निर्णय किया है वह अस्तित्व में आयेगा ही। मेरे विचार से हमने उसे प्राप्त कर लिया है। निस्संदेह हम किसी भी हालत में उसे प्राप्त करते ही परन्तु हमने उसे कई अन्य लोगों की सद्भावना से प्राप्त किया है। मेरे विचार से यह एक और बात प्राप्त हुई है। जिन लोगों को हमारी इस प्राप्ति से नुकसान पहुंचे उनकी सद्भावना हमें प्राप्त हो यह भी एक प्रकार की प्राप्ति है। इससे यह प्रदर्शित होता है कि काम करने का वह ढंग भी महत्वपूर्ण है जिससे किसी के हृदय में कटुता शेष न रह जाये। किसी ओर से भी सद्भावना प्रकट की जाये वह है बहुमूल्य ही। इसलिये जब मैं लन्दन में था और वहां से चले जाने पर भी जब मैं इस प्रश्न पर विचार कर रहा था तो मुझे यह अनुभव हुआ कि थोड़े ही अंश में क्यों न हो परन्तु गांधीजी इस कार्य को पसन्द करते। मैं कार्य से अधिक कार्यप्रणाली पर विचार कर रहा हूं। मैंने यह विचार किया कि इस कार्य से ही संसार में बहुत सद्भावना उत्पन्न हो जायेगी। इस सद्भावना से हमें तथा इंग्लैंड को तो अवश्य थोड़ा बहुत लाभ होगा किन्तु वर्तमान मनोवैज्ञानिक संघर्ष में जबकि लोग एक दूसरे को दोषी ठहरा रहे हैं, इससे एक प्रकार से संसार को भी बहुत लाभ होगा। यह हो सकता है कि कोई व्यक्ति दोषी हो यह हो सकता है कि कुछ राजनीतिज्ञ अथवा बड़े आदमी दोषी हों किन्तु उन करोड़ो लोगों को कोई दोषी नहीं ठहरा सकता जिन्हें संहारकारी युद्धों में अपने प्राणों से हाथ धोने पड़ेंगे। प्रत्येक देश का बृहत् जनसमुदाय युद्ध विरोधी है। वह युद्धों से भयभीत है। कभी इसी भय का सहारा लेकर युद्ध को उभाड़ा जाता है क्योंकि यह हमेशा ही कहा जा सकता है कि विपक्षी आप पर आक्रमण करने आ रहा है।

इसलिये मैं यह चाहता हूं कि यह सभा न केवल इस पर विचार करे कि राजनैतिक क्षेत्र में हमने क्या प्राप्त किया है क्योंकि उसे तो हम प्राप्त करते ही और कोई भी व्यक्ति हमारे इस कार्य में बाधा नहीं पहुंचा सकता था बल्कि इस पर भी विचार करे कि महत्त्वपूर्ण बात यह है कि हमने इसे ऐसे ढंग से प्राप्त किया है जिससे हमें तथा अन्य लोगों को सहायता मिलती है। इस ढंग से काम करने से हमें किसी कुपरिणाम को नहीं भोगना पड़ता और इस पर विचार करने की आवश्यकता नहीं रह जाती कि कहीं हमने किसी को नुकसान पहुंचाकर तो फायदा नहीं उठाया है और कोई व्यक्ति इस कारण कुढ़ तो नहीं रहा है और बदला लेने की तो नहीं सोच रहा है। यदि संसार इस ढंग से काम करे तो सभी प्रश्न बहुत आसानी से हल हो जायेंगे और युद्धों की संख्या ही नहीं बल्कि उसके परिणामों का प्रभाव भी बहुत कम हो जायेगा। सम्भवत: युद्ध होंगे ही नहीं। अंग्रेजों के दोषों की तथा दूसरे देशों की साम्राज्यवाद अथवा उपनिवेशों पर प्रभुत्व रखने की नीति की चर्चा

करना आसान है। उनके बारे में ये बातें अवश्य कही जा सकती हैं। आज किसी देश के गुण-दोषों की और भारत के भी गुण-दोषों की आप एक सूची बना सकते हैं। इन सूचियों को बना लेने पर भी यह प्रश्न रह ही जाता है कि आप अन्य लोगों के गुणों को किस प्रकार ग्रहण करेंगे और संसार में सद्भावना की नींव कैसे डालेंगे।

मैं इस निर्णय पर पहुंचा हूं कि किसी पक्ष के दोषों पर ही जोर देने से किसी सरकार को अथवा किसी राष्ट्र को कोई लाभ नहीं होता। हमें इसकी उपेक्षा नहीं करनी चाहिये। कभी तो हमें इस प्रकार की मनोवृत्ति से संघर्ष भी करना होता है। हमें इसके लिये तो तैयार रहना ही चाहिये परन्तु साथ ही मेरे विचार से अपने ही गुणों को देखने से और अन्य लोगों को दोष देते रहने से हम अपने वास्तविक प्रश्न को नहीं समझ सकते। इसमें सन्देह नहीं कि अपने को गुणवान् समझने से तथा अन्य लोगों को दोषी समझने से हमें एक प्रकार के आन्तरिक सन्तोष का अनुभव होता है। मैं धार्मिक शब्दावलि का प्रयोग कर रहा हूं यद्यपि मैं जानता हूं कि मैं उसे प्रयोग करने में असमर्थ हूं परन्तु बात यह है कि मैं इस आदरणीय सभा के सम्मुख इस प्रश्न के नैतिक अंग को रखना चाहता हूं। इसका यह अर्थ नहीं है कि भारत के हित को हानि पहुंचाकर मैं किसी ऊंचे नैतिक स्तर से बात करने का साहस कर रहा हूं। कोई भी सरकार ऐसा करने का साहस नहीं कर सकती। परन्तु यदि कोई लाभप्रद कार्य किया जाये और नैतिक दृष्टि से भी वह उचित हो तो यह समझ में आ सकता है और उसकी प्रशंसा की जा सकती है। मेरा यह निवदेन है कि हमने जो कुछ किया है उससे हमें कोई हानि नहीं हुई है और न हो सकती है। राजनैतिक दृष्टि से हम जो कुछ प्राप्त करना चाहते थे उसे हमने प्राप्त किया है और सम्भावना इसकी है कि हम उन्नति करेंगे और हमें उन्नति करने के लिये पहले से अधिक अवसर मिलेंगे। बिना ऐसा किये हुये हमें कुछ वर्षों तक ये अवसर न मिलते।

अन्त में मुझे यह कहना है कि इस कार्य से संसार में शान्ति स्थापित करने में सहायता मिलती है और उसके लिये प्रोत्साहन मिलता है। यह मैं कह नहीं सकता कि किस सीमा तक यह सहायता मिलती है परन्तु यह मैं जानता हूं कि इससे यह देश किसी अन्य देश के प्रति वचनबद्ध नहीं हो जाता। इस सभा को अथवा संसद को इसकी स्वतंत्रता है कि वह किसी भी समय अपनी इच्छा से न कि मेरी इच्छा से इस सम्बन्ध को तोड़ दे। मैं केवल यह बताना चाहता हूं कि भविष्य के लिये हमने अपने देश को किसी प्रकार के बन्धन में नहीं डाला है। भविष्य में यह देश जिस मार्ग का भी अवलम्बन करना चाहे कर सकता है। यदि वह देखेगा कि यह मार्ग ठीक है तो वह इसी मार्ग पर चलता रहेगा। यदि वह देखेगा कि यह मार्ग ठीक नहीं है तो हमने उसे दूसरे मार्ग को ढूंढ निकालने के लिये किसी प्रकार के बन्धन में नहीं डाला है। मेरा यह निवेदन है कि लंदन के सम्मेलन के निर्णय की घोषणा के अनुसमर्थन के लिये मैंने इस सभा के सम्मुख जो प्रस्ताव रखा है उसका इस सभा को केवल ऊपरी तौर से समर्थन न करना चाहिये बल्कि

[माननीय श्री जवाहरलाल नेहरू]

उसमें जो बाते हैं उनकी प्रशंसा भी करनी चाहिये क्योंकि उनका भारत के भविष्य के लिये एक महत्त्व है जो हमारे आंखों के सामने ही स्पष्ट होता जा रहा है। वास्तव में बहुत पहले से हमने अपने भाग्य को भारत के भाग्य के साथ जोड़ रखा है। हमारा अपना भविष्य भारत के भविष्य पर ही निर्भर है। हम बहुत समय से भविष्य के बारे में सोचते रहे हैं और उसके स्वप्न देखते रहे हैं। अब हम एक ऐसी मंजिल पर पहुंचे हैं जहां हमें अपने निर्णयों तथा कार्यों से प्रत्येक कदम पर अपने भविष्य का निर्माण करना है। अब हमारे लिये यह उचित नहीं है कि केवल प्रस्तावों को स्वीकार करके अथवा अन्य लोगों की आलोचना अथवा निन्दा करके हम भविष्य के सम्बन्ध में चर्चा करें। अब यह हमारे ही हाथ में है कि हम अच्छी व्यवस्था स्थापित करें अथवा बुरी। कभी-कभी हममें से कुछ लोग दूसरों की निन्दा करके ही भविष्य की कल्पना करते हैं। मेरी यह धारणा है कि इस सभा में कुछ सदस्य जिन्होंने इस प्रस्ताव का विरोध किया है और कुछ अन्य सदस्य भी जो इस समय सभा में उपस्थित नहीं हैं उस पुराने पिंजरे से बाहर नहीं निकल पाये हैं जिसमें हम सब लोग अभी तक बन्द रहे हैं। उसका दरवाजा भले ही खोल दिया गया हो परन्तु कम से कम हमारे दिमाग अभी उसके अन्दर ही हैं। उनके कारण हमें तथा मेरे कुछ मित्रों को मेरे पन्द्रह बीस वर्ष पहले के भाषण स्मरण हो आये हैं। यदि वे मेरे भाषणों को इतना महत्त्व देते हैं तो उन्हें मेरे इस भाषण को ध्यानपूर्वक सुनना चाहिये। संसार बदल चुका है। किन्तु दुराचार दुराचार ही है और सदाचार सदाचार ही। मेरे कहने का यह अर्थ नहीं है कि अब ऐसा भी नहीं रह गया है। मेरे विचार से साम्राज्यवाद एक दूषित चीज है और जहां कहीं भी वह पाया जाये उसे जड़ से उखाड़ने की आवश्यकता है। इसी प्रकार उपनिवेशों पर प्रभुत्व रखना एक दूषित प्रवृत्ति है और जहां कहीं भी यह पाई जाये इसे जड़ से उखाड़ने की आवश्यकता है। जातीयता भी एक दूषित चीज है और उसे मिटाने के लिये संघर्ष करने की आवश्यकता है। यह सब सच है। किन्तु संसार बदल चुका है और इंग्लैंड भी बदल चुका है। यूरोप बदल चुका है और भारत भी बदल चुका है। सब कुछ बदल चुका है और बदल रहा है इन सब बातों को देखने की आवश्यकता है। यूरोप को ही देखिये जहां पिछले तीन सौ वर्षों में कला और विज्ञान का उत्थान हुआ है और वह सारे संसार में एक नई सभ्यता स्थापित करने में समर्थ रहा है। इस उत्थान काल के लिये यूरोप तथा यूरोप के कुछ देश गर्व कर सकते हैं। किन्तु इन तीन सौ अथवा इससे कुछ अधिक वर्षों के काल में यूरोप धीरे-धीरे एशिया और अफ्रीका में अपना प्रभुत्व स्थापित करता रहा है। यह साम्राज्यवादी हो गया और संसार के अन्य भागों का शोषण करने लगा। इस प्रकार संसार की राजनीति में उसी का प्रभुत्व रहा। मेरा यह विश्वास है कि यूरोप में अब भी बहुत से सुन्दर गुण विद्यमान हैं। जिन लोगों में सुन्दर गुण होते हैं वे सुन्दर कार्य करते हैं। किन्तु राजनैतिक दृष्टि से अब वह संसार का केन्द्र नहीं हो

सकता और न अब वह संसार के अन्य भागों में वैसा प्रभुत्व रख सकता है जैसा कि वह रखता आया है। इस दृष्टि से यूरोप का अब वह महत्त्व नहीं हो सकता जो पहले था और संसार के इतिहास का तथा राजनैतिक और अन्य प्रकार के कार्यों का केन्द्र अब वहां नहीं रह गया है। मेरा अर्थ यह नहीं है कि अब किसी अन्य महाद्वीप का प्रभुत्व हो गया है। यह बात नहीं है। किन्तु अब मानचित्र बिल्कुल बदल गया है। आप ब्रिटिश साम्राज्य तथा तत्सम्बन्धी बातों की चर्चा करते हैं। परन्तु मेरा यह कहना है कि यदि साम्राज्यवाद प्रभाव में रहना भी चाहे तो उसमें अब इसके लिये सामर्थ्य नहीं रह गया है। एशिया के कुछ भू-भागों में अभी फ्रांसीसी साम्राज्यवाद वर्तमान है किन्तु अब उसमें प्रभाव में रहने का सामर्थ्य नहीं रह गया है। वह भले ही एक वर्ष या दो वर्ष तक जीवित रखा जाये परन्तु अब उसमें जीवित रहने का सामर्थ्य नहीं रह गया है। डच लोग भी उसे कुछ प्रदेशों में जीवित रख सकते हैं किन्तु यदि आप इतिहास पर दृष्टिपात करें तो आपको यह स्पष्ट हो जायेगा कि ये बातें पिछली कुछ बातों के अवशेष मात्र हैं। किन्तु वे अब रह नहीं सकतीं। आज भी उनके पीछे कुछ शक्ति हो सकती है और वे कुछ वर्षों तक चल सकती हैं इसीलिये हमने इनके विरुद्ध संघर्ष करना है और सचेत रहना है। मैं इसे स्वीकार करता हूं। परन्तु हमें यह न समझना चाहिये कि अब भी यूरोप अथवा इंग्लैंड वैसा ही है जैसा वह पन्द्रह या बीस वर्ष पूर्व था। ऐसी बात नहीं है।

मैं उन मित्रों की चर्चा कर रहा था जिन्होंने हमारे इस कार्य की आलोचना की है और वास्तव में अकर्मण्ता के दृष्टिकोण को अपनाया है। मैंने अन्यत्र यह कहा था कि उनका दृष्टिकोण प्रगतिशून्य है। मैंने यह भी कहा था कि वर्तमान परिस्थति में वह प्रतिक्रियावादी कहा जा सकता है। मुझे खेद है कि मैंने इस शब्द का प्रयोग किया क्योंकि मैं ऐसे शब्दों का प्रयोग नहीं करना चाहता जिनसे दूसरों को दु:ख पहुंचे। मैं इस प्रकार लोगों को दु:ख नहीं पहुंचाना चाहता। मैं ऐसी वाक्पटुता से अनभिज्ञ नहीं हूं जिससे लोगों को दु:ख पहुंचे किन्तु मैं उसका प्रयोग नहीं करना चाहता हूं क्योंकि हमें बहुत बड़े प्रश्नों को हल करना है। अपने विरोधी के तर्क को एक दो चातुर्यपूर्ण शब्दों का प्रयोग करके खण्डन करने से जो संतोष होता है वह बहुत साधारण प्रकार का संतोष है क्योंकि इस प्रकार हम उसके हृदय में प्रवेश नहीं करते हैं। किन्तु मैं लोगों के हृदय में प्रवेश करना चाहता हूं। *(तुमुल हर्षध्वनि)* मेरी यह धारणा है कि घर में हमारा जो कोई भी मतभेद हो वह सच्चा मतभेद हो। हम यह नहीं चाहते कि इस देश को एक ही मत मानने के लिये बाध्य किया जाये। *(हर्षध्वनि)*

वैदेशिक मामलों के सम्बन्ध में भी मतभेद हो सकता है। मैं इसे स्वीकार करता हूं। किन्तु किसी भी ऐसे व्यक्ति के सामने, जिसको भारत के प्रति प्रेम है और जो यह चाहता

[माननीय श्री जवाहरलाल नेहरू]

है कि भारत तथा संसार उन्नति करे, ये आधारभूत बातें रहती हैं कि भारत स्वतंत्र रहे, पूर्णतया स्वतंत्र रहे, भारत की आर्थिक तथा अन्य प्रकार की उन्नति हो और भारत संसार में स्वतंत्रता तथा शान्ति स्थापित करने में अपना योग दे। ये आधारभूत बातें हैं। भारत को उन्नति करनी ही है। भारत को अपने ही घर को पहले उन्नत बनाना है। जब तक हमारे देश को आर्थिक शक्ति तथा अन्य प्रकार की शक्ति प्राप्त न हो तब तक वह अन्य उद्देश्यों की पूर्त्ति कैसे कर सकता है? इस सम्बन्ध में मतभेद हो सकता है कि हमारे देश को किस प्रकार यह शक्ति प्राप्त हो। मेरे विचार से हम लोगों के लिये यह सम्भव है कि देश को सशक्त बनाने के साधनों के सम्बन्ध में बहुत मतभेद होते हुये भी हम एक ही प्रकार की वैदेशिक नीति अपनाने के सम्बन्ध में सहमत हों अथवा बहुत अंश तक सहमत हों। मैं अपना अर्थ स्पष्ट करना चाहता हूं। मेरा यह आशय कदापि नहीं है कि कोई तर्क ही उपस्थित न किया जाये या किसी प्रकार की आलोचना ही न की जाये। अवश्य की जाये। मुझे इसकी आवश्यकता है। जिस देश में इस प्रकार की आलोचना होती है वह देश उन्नतिशील कहा जा सकता है। किन्तु मैं यह चाहता हूं कि जो भी तर्क उपस्थित किया जाये वह मैत्रीपूर्ण हो न कि विरोधपूर्ण क्योंकि विरोधपूर्ण तर्क कभी तर्क की सार्थकता की दृष्टि से उपस्थित नहीं किया जाता किन्तु विपक्षी को क्षोभ पहुंचाने के लिये उपस्थित किया जाता है। राजनीति में प्रायः ऐसी बातें दिखाई देती है। मैंने यह देखा है कि किसी भी व्यक्ति ने बहुत मतभेद नहीं प्रकट किया है। मैं उन लोगों के बीच में तथा उन समूहों के बीच में बहुत मतभेद देखता हूं जो अन्य देशों को न कि भारत को अपने सामने रखते हैं। यह आधारभूत मतभेद है। ऐसे लोगों से किसी भी विषय के सम्बन्ध में साहमत्य होना बहुत कठिन है। किन्तु उन लोगों का जिन्हें भारत की स्वतंत्रता, भारत के निकट भविष्य में तथा दूर भविष्य में उन्नति तथा विश्व-शान्ति का ध्यान रहता है, हमारी वैदेशिक नीति से बहुत मतभेद न होगा। मेरे विचार से वास्तव में कोई मतभेद है ही नहीं। वे केवल अपने विचार दूसरे शब्दों में प्रकट करते हैं। कोई भी सरकार सरकारी भाषा का ही प्रयोग कर सकती है किन्तु अन्य लोग विरोधमूलक अथवा उत्तेजनामूलक भाषा का प्रयोग करते हैं जैसा कि हम भी करते आये हैं। इसलिये मेरी इस सभा से तथा देश से यह प्रार्थना है कि वह किसी दल विशेष की भावना से अथवा किसी बात के सम्बन्ध में मोल-तोल करने की भावना से इस प्रश्न पर विचार न करें।

किसी भी व्यापारिक समझौते में हमें इसके लिये सावधान रहना पड़ता है कि हम कहीं कोई ऐसी चीज न खो बैठें जो राष्ट्र के लिये लाभप्रद हो। साथ ही हमें इस प्रश्न का उदारता से विचार करना है। हमारा राष्ट्र एक बड़ा राष्ट्र है। यदि हमारे राष्ट्र का आकार बड़ा है तो केवल इस कारण हमें कारोबार उपलब्ध न होगा। वह हमें तभी उपलब्ध हो

सकता है जब हमारा दिल व दिमाग ऊंचा हो, हमारी समझ ऊंची हो और हमारे कार्य ऊंचे हों। आप बाजार में मोल-तोल करने वालों को भले ही छोटी-मोटी चीजें दे बैठें किन्तु यदि आप कोई बड़ा काम करेंगे तो सारी दुनिया आपकी ओर हो जायेगी। भलाई का परिणाम भलाई ही होता है। भलाई करने से दूसरे लोग भी भलाई करने लगते हैं। किसी बड़े काम से उदारता का परिचय मिलता है और उससे अन्य लोग भी उदार व्यवहार करने लगते हैं।

इसलिये मैं आपसे यह सिफारिश करता हूं कि यह प्रस्ताव स्वीकार कर लिया जाये और साथ ही यह विश्वास करता हूं कि यह सभा न केवल इस प्रस्ताव को स्वीकार करेगी बल्कि यह भी अनुभव करेगी कि यह अन्य देशों से अच्छे सम्बन्ध स्थापित होने तथा उनके प्रति तथा संसार के प्रति हमारी ओर से उदारता के व्यवहार का द्योतक है। इससे हमारी स्थिति ही सुदृढ़ न होगी बल्कि हम शान्ति को भी सुदृढ़ बनाने में समर्थ होंगे।

***अध्यक्ष:** सभा को स्मरण होगा कि इस प्रस्ताव के सम्बन्ध में दो संशोधन उपस्थित किये गये हैं। मैं सभा के सम्मुख प्रोफेसर शिब्बनलाल सक्सेना का संशोधन रखता हूं। यदि वह स्वीकार कर लिया गया तो अन्य संशोधनों को सभा के सम्मुख रखने की आवश्यकता न रह जायेगी।

***श्री लक्ष्मीनारायण साहू:** (उड़ीसा : जनरल): सभापति जी, संविधान सभा की आज्ञा मिले तो मैं अपने संशोधन को वापस लेता हूं।

***अध्यक्ष:** श्री लक्ष्मीनारायण साहू अपना संशोधन वापस लेना चाहते हैं। क्या सभा उन्हें उसे वापस लेने की आज्ञा देती है?

सभा की अनुमति से संशोधन वापस ले लिया गया।

***अध्यक्ष:** अब केवल श्री शिब्बनलाल सक्सेना का संशोधन रह जाता है। अब मैं श्री शिब्बनलाल सक्सेना के संशोधन पर मत लेता हूं।

प्रस्ताव यह है कि:

> ''प्रस्ताव में 'यह सभा... का अनुमोदन इस रूप से करती है' शब्दों के स्थान पर 'इस सभा ने... पर उस रूप में ध्यानपूर्वक विचार किया है' शब्द रख दिये जायें और निम्नलिखित शब्द प्रस्ताव के अन्त में जोड़ दिये जायें:
>
> 'और इस सभा का यह मत है कि राष्ट्रमण्डल की सदस्यता सर्वसत्ता प्राप्त स्वतंत्र गणराज्य के रूप में भारत की नई स्थिति के अनुकूल है। इसके अतिरिक्त सदस्यता

[अध्यक्ष]

की शर्त्तें भारत की प्रतिष्ठा और उसकी नई स्थिति के लिये अपमानजनक है और इसलिये वे अवश्यमेव अन्तर्राष्ट्रीय मामलों में उसकी कार्यस्वतंत्रता को सीमित तथा कम कर देंगी और उसे आंग्ल-अमरीकी गुट रूपी रथ के पहिये से बांध देंगी। भारत, जिसकी जनसंख्या समस्त राष्ट्रमण्डल की 50 करोड़ जनसंख्या में से 35 करोड़ है इंग्लैंड के सम्राट को किसी रूप अथवा शक्ल के राष्ट्रमण्डल का प्रधान स्वीकार नहीं कर सकता। भारत उस राष्ट्रमण्डल का सदस्य भी नहीं बन सकता जिसके कई सदस्य अब भी भारतीयों को नीची प्रजाति समझते हैं और उनके विरुद्ध रंगभेद बरतते हैं और उन्हें नागरिकता के समस्त मूलभूत अधिकारों से वंचित किये हुये हैं। दक्षिण अफ्रीका में अर्वाचीन भारतीय विरोधी उत्पात, आस्ट्रेलिया में सर्वश्वेत नीति और मलाया में भारत सरकार के विरोध के होते हुये भी गणपति को फांसी देना और साम्बशिवम् के मृत्युदण्ड को कम न करना, स्पष्टतया सिद्ध करते हैं कि भारत राष्ट्रमण्डल की सदस्यता से कोई लाभ नहीं उठा सकता और यह भी सिद्ध करते हैं कि ब्रिटेन और राष्ट्रमण्डल के अन्य सदस्य अपनी साम्राज्यवादी और प्रजातीय नीतियों को नहीं छोड़ सकते।

''इन सब बातों पर विचार करके और इस बात पर भी विचार करके कि कांग्रेस दल ने, जिसे विधान-परिषद् में और देश के अन्य प्रान्तीय विधान-मण्डलों में पूर्ण बहुमत प्राप्त है, सामान्य निर्वाचकों के समय भारत की पूर्ण स्वतंत्रता और ब्रिटिश सम्बन्धों के विच्छेद को अपना घोषित उद्देश्य रखा था, उस नीति के विपरीत ब्रिटिश राष्ट्रमण्डल से कोई नया सम्बन्ध यथोचित रूप से भारतीय गणराज्य की नई संसद द्वारा ही निश्चित किया जा सकता है, जो नये विधान के अंतर्गत प्रौढ़ मताधिकार के आधार पर निर्मित होगी।

''अत: परिषद् यह निश्चय करती है कि राष्ट्रमण्डल में भारत की सदस्यता के प्रश्न को तब तक स्थगित कर दिया जाये जब तक कि नई संसद नहीं निर्मित होती और देश की जनता की इच्छायें स्पष्टत: नहीं जानी जाती। यह परिषद् भारत के प्रधानमंत्री को आदेश देती है कि वे ब्रिटेन के प्रधानमंत्री और राष्ट्रमण्डल के अन्य सदस्यों को तदनुसार सूचना दें।''

संशोधन गिर गया।

***अध्यक्ष:** अब मैं मूल प्रस्ताव पर मत लेता हूं।

प्रस्ताव यह है कि:

''यह निश्चय किया जाता है कि यह सभा भारत के राष्ट्रमण्डल का सदस्य बने रहने के बारे में उस घोषणा का अनुसमर्थन करती है जिसके लिये भारत के प्रधानमंत्री

सहमत हुये थे और जिसका उल्लेख उस सरकारी बयान में किया गया था जो 27 अप्रैल, 1949 ई. को राष्ट्रमण्डल के प्रधानमंत्रियों के सम्मेलन के समाप्त होने पर निकाला गया था।''

प्रस्ताव स्वीकार कर लिया गया।

(तुमुल हर्षध्वनि)

***मौलाना हसरत मोहानी:** श्रीमान्, मैं निश्चित रूप से यह जानना चाहता हूं कि इस प्रस्ताव के पक्ष में कौन लोग हैं और इसके विरोध में कौन लोग हैं? इसके अतिरिक्त मैं यह भी जानना चाहता हूं कि तटस्थ कौन लोग हैं।

***अध्यक्ष:** क्या आप मत विभाजन चाहते हैं?

***कई माननीय सदस्य:** इसके लिये अब बहुत देर हो गई है।

***मौलाना हसरत मोहानी:** मेरा कहना यह है कि जो लोग तटस्थ हैं वे इस प्रस्ताव के विरोध में हैं। मैं यह जानना चाहता हूं कि...

***अध्यक्ष:** यह किसी प्रकार नहीं जाना जा सकता कि तटस्थ कौन हैं?

***मौलाना हसरत मोहानी:** इस सभा का यह निर्णय अन्तिम न होगा...। *(विघ्न)*

***अध्यक्ष:** क्या मौलाना मतविभाजन चाहते हैं?

***मौलाना हसरत मोहानी:** जी हां...। *(विघ्न)*

***मि. तजम्मुल हुसैन:** श्रीमान्, अब मतविभाजन के लिये बहुत देर हो चुकी है। आपके यह घोषित करने से पूर्व कि प्रस्ताव स्वीकार हो गया है उन्हें मतविभाजन की मांग कर लेनी चाहिये थी। अब इसके लिये देर हो गई है।

***मौलाना हसरत मोहानी:** यह गलत है। मैं तुरन्त खड़ा हो गया था।

***अध्यक्ष:** मेरे विचार से यदि मौलाना की इच्छानुसार मतविभाजन किया भी जाये तो उन्हें अपने पक्ष में आवश्यक मत मिल जायेंगे। मेरे विचार से मतविभाजन करना आवश्यक नहीं है क्योंकि इसकी मांग देर से की गई है।

अब हम कल प्रात:काल 8 बजे तक के लिये सभा स्थगित करते हैं।

इसके पश्चात् परिषद् बुधवार 18 मई, 1949 ई. के प्रात: 8 बजे तक के लिये स्थगित हो गई है।